विमर्श

विकास संवाद का पत्र

साथी,

हम पुनः विमर्श के साथ आपके सामने हैं। इन दिनों मध्यप्रदेश सहित कई राज्यों में चुनावी माहौल है। विधान सभा चुनावों को देखते हुए हमारी भूमिका इनदिनों काफी महत्वपूर्ण हो गई है। ऐसे वक्त में हमारे लिए यह जरूरी है कि हम विभिन्न स्तरों पर विकास के विभिन्न पहलुओं को लेकर पैरवी करें। इन दिनों राजनैतिक पैरवी में अपनी ऊर्जा झोंकने की जरूरत है।

पिछले दिनों विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं एवं जन संगठनों ने आम लोगों के नजरिये से विकास के विभिन्न मुद्दों पर घोषणा–पत्र भी जारी किये हैं। इन घोषणा–पत्रों का जिक्र आप तक पहुंच गया होगा। इसे लेकर राजनैतिक दलों के प्रमुख लोगों से मिलने का भी काम किया जा रहा है। उन्हें प्रभावित करने के लिए पुरजोर कोशिश की जा रही है, ताकि जनपक्षीय मुद्दों को राजनैतिक दलों के घोषणा–पत्रों में शामिल कराया जा सके। मीडिया में भी इसकी चर्चा हो रही है।

हमारा यह मानना है कि राज्य स्तर पर इस तरह के जो प्रयास हो रहे हैं, उसका प्रतिबिम्ब जमीनी स्तर पर भी दिखना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि स्थानीय मुद्दों को लेकर स्थानीय स्तर पर नेताओं से मिलना, उनसे जनता के सामने विकास के मुद्दों पर वादा करवाना, रैली निकालना और लोगों को बताना कि वे बेहतर उम्मीदवार का चुनाव कैसे करें, जैसे कई कार्यक्रम आयोजित किये जायें।

मुद्दों की बात निकल पड़ी है, तो हम आपको यह बता दें कि पिछले कुछ महीने से प्रदेश में कुपोषण से बच्चों की मौत का मुद्दा छाया हुआ है। प्रदेश के कई क्षेत्र गंभीर कुपोषण से प्रभावित हैं। हमें यह देखना है कि कैसे प्रदेश को इस समस्या से मुक्ति दिलाई जाये और इसके लिए हमें क्या करना होगा, इस पर भी विचार करें?

इस अंक में हम कुपोषण और प्रदेश की अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचारणीय विश्लेषण को दे रहे हैं।

हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप जो भी मुद्दा, विषय या विचार महत्वपूर्ण समझते हैं, उसे लिखें और हमें भेजें, ताकि विमर्श की प्रक्रिया आगे बढ़ाई जा सके और जो बदलाव हो रहे हैं उन्हें और रचनात्मक बनाया जा सके। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं का भी इंतजार रहेगा।

✍ **विकास संवाद विमर्श समूह की ओर से**

विकास संवाद

ई–7/226, प्रथम तल, धनवंतरी कॉम्पलेक्स के सामने, शाहपुरा, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मध्यप्रदेश
फोन : 0755–4252789, ई मेल : vikassamvad@gmail.com, Web: www.mediaforrights.org

इस अंक में .....

बाल अधिकार

- मुद्दों की राजनीति में कुपोषण की दरकार — सचिन कुमार जैन — 03
- कुपोषण का तांडव : दर्जनों बच्चों की मौत — प्रशान्त कुमार दुबे — 06
- विमर्श के मार्च 2008 अंक में प्रकाशित खबर का पुनर्प्रकाशन — 08
- समुदाय ने ली कुपोषण मिटाने की जिम्मेदारी — प्रशान्त कुमार दुबे — 09

विस्थापन एवं वन अधिकार

- विस्थापन का ''जंगल राज'' — स्मृति / युसुफ बेग — 11
- विस्थापन और बच्चे — नीलम शिवहरे — 14

भोजन एवं काम का अधिकार

- उपेक्षित है हरदुआ — रोली शिवहरे — 17
- भूख की राजनीति एवं जन वितरण प्रणाली — नीति पुरोहित — 18

पंचायती राज और महिला

- महिला पंच और सरपंच निकालेंगी अखबार — विकास संवाद समूह — 20

कानूनी पक्ष

- उचित पुर्नवास के पूर्व नहीं हटाये जायेंगे वनवासी — विकास संवाद समूह — 23
- आदेशों का क्रियान्वयन नहीं हो रहा है जमीनी स्तर पर — 24

महिला अधिकार

- बिकती लाडलियां और आंख मूंदी सरकार ! — अरघा — 25
- महिला एवं बाल व्यापार – एक चुनौती — नीति पुरोहित — 26

स्वास्थ्य का अधिकार

- स्वास्थ्य के लिये आदिवासियों का संघर्ष — सचिन कुमार जैन — 28

(इस दस्तावेज को तैयार करने में चाइल्ड राइट्स एण्ड यू ने सहयोग किया है।)

1. बाल अधिकार

मुद्दों की राजनीति में कुपोषण की दुरकार

जिन मसलों पर राजनीति समझौता करके चुप्पी साध लेती है, उन मसलों पर अफसरशाही सिर रखकर सोती है। मध्यप्रदेश के सतना जिले के तीन गांवों में मई माह में एक सप्ताह के भीतर 9 बच्चों की मौत हो गई। किसी को पता चला तो मामला बाहर लाया गया। स्वास्थ्य विभाग ने रिपोर्ट जारी की कि ये मौतें कुपोषण के कारण हुई हैं और महिला एवं बाल विकास विभाग ने यह वक्तव्य देकर खण्डन कर दिया कि बच्चे बीमारी के कारण मरे हैं। कोई जिम्मेदार अफसर वहां नहीं पहुंचा और फिर रिकार्ड में फेरबदल करके सरकार ने कह दिया कि बच्चों की उम्र 6 से ज्यादा हो चुकी थी, मतलब वे सरकार की जिम्मेदारी के बाहर हो चुके थे। स्थिति यह है कि इस राजनीति के बीच सरकार बच्चों के जीवन को बचाने के बजाय मामले को झुठलाने में लगी है, और देखते ही देखते प्रदेश के अन्य हिस्सों से बच्चों की मौत की खबरें आने लगी। सतना में 50 से ज्यादा बच्चों की मौत और शिवपुरी, श्योपुर, खंडवा आदि जिलों की स्थिति को देखा जाये तो सैकड़ों बच्चों की मौत। बच्चे एक जीवित जीव के रूप में समग्रता में नहीं बल्कि उम्र, विभाग और समस्याओं के टुकड़ों में काट–काटकर देखे जाते हैं। मसला केवल सतना का ही नही है, राज्य के 24000 आंगनबाड़ी केन्द्रों में पिछले 3 माह से पोषण आहार नही बंटा, और ऐसा अक्सर ही होता रहता है। बच्चों की मौते होती रही हैं पर उनमें इतनी धार नहीं रही कि वे राजनीति की चट्टान में बहस की इमारत उकेर सकें। यह उनके राजनीतिक प्राथमिकताओं से बाहर होने का प्रमाण भी है। अब संपन्न वर्ग के लिये किंडरगार्डन बेहद महत्वपूर्ण हो गये हैं और आंगनवाड़ी केन्द नेस्तनाबूत किये जा रहे हैं, क्योंकि बाजार इस धंधे में सरकार की कोई भूमिका नही देखना चाहता है।

बच्चों के कुपोषण का मतलब है कि सरकार की बच्चों की जरूरत और अधिकारों के प्रति राजनैतिक उदासीनता, भ्रष्टाचार गैर जवाबदेहिता और विकास की वर्तमान प्राथमिकताओं के कारण पैदा हो रही भुखमरी। बेहद महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रदेश की कुल जनसंख्या में से 16 प्रतिशत हिस्सा 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का है यानी लगभग 1. 10 करोड़ की आबादी इस आयु वर्ग में आती है परन्तु इन बच्चों के लिये देश में केवल एक योजना का संचालन सरकार करती है। एकीकृत बाल विकास योजना। और इन पर सरकार अपने कुल व्यय का केवल 0.9 प्रतिशत व्यय करती है। अगर हम इस मुद्दे को बेकार मानते हैं तो जरा यह और जान लें कि भारत में कुपोषण के कारण विकास की दर में 3 से 4 फीसदी कमी आती है क्योंकि कुपोषण के कारण देश की आधी आबादी विकास और उन्नति में पूरी क्षमता के साथ योगदान नहीं दे पाती है।

हमारी राजनीति कुपोषण और इसके शिकार बच्चों के प्रति कितनी अमानवीय और भावनात्मक रूप से हिंसक है उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 11वीं पंचवर्षीय योजना (वर्ष 2007–12) में आईसीडीएस (आंगनबाड़ी कार्यक्रम) के लिये जो कार्यक्रम है, एक साल (2007–08) गुजर जाने के बाद भी उसका क्रियान्वयन तो दूर भूमिका भी नहीं बन पाई है। और वर्ष 2008–09 के बजट में भी उसके संकेत नहीं दिखे, क्योंकि केंद्रीय मंत्री की मर्जी के अनुरूप पोषण आहार का काम निजी कम्पनियों को सौंपने का निर्णय नही हो सका। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 13 दिसम्बर 2006 के आदेश में आंगनबाड़ी कार्यक्रम का लोकव्यापीकरण करने के निर्देश दिये हैं। अब तक भारत के 4 करोड़ बच्चों को ही इस कार्यक्रम का लाभ मिल रहा था और 14 लाख बस्तियों, गांवों, बसाहटों में से 8 लाख में आंगनबाड़ी केन्द्र ही नहीं थे, तब न्यायालय ने निर्देश दिये कि देश के हर बच्चे, हर गर्भवती, धात्री महिला और किशोरी बालिका की आंगनबाड़ी केन्द्र में आमद होना चाहिये। उन्हे पोषण आहार, स्वास्थ्य जांच, स्कूल पूर्व शिक्षा, टीकाकरण सहित सभी सात सेवायें मिलना चाहिये, यदि आंगनबाड़ी का लोकव्यापीकरण है और यह काम दिसम्बर 2008 तक पूरा हो जाना चाहिये। परन्तु आज भी इस मिशन के मामले

में कोई राजनैतिक हलचल नजर नहीं आती है। मध्यप्रदेश का ही उदाहरण लें, राज्य में केवल 67770 आंगनबाड़ी केन्द्र संचालित हो रहे हैं। अब भी 58 हजार केन्द्रों की कमी है और लगभग 58 लाख बच्चे आंगनबाड़ी केन्द्र विकास सेवाओं से वंचित हैं परन्तु नये केन्द्रों की शुरूआत के मामले में अब भी राजनैतिक नज़रिया लापरवाही ही नजर आता है।

हमने उन निर्देर्शो को देखा है जिनमें सरकार के मंत्रियों और अफसरों के लिये क्षेत्र भ्रमण के दौरान देखी जाने वाली योजनाओं और विषयों का विवरण होता हे। मसला केवल निर्देशों का ही नहीं है बल्कि वास्तविक जमीनी अनुभवों का भी है और अनुभव यह बताते हैं कि मुख्यमंत्री और अफसर यह देखने की कोशिश नहीं करते है। कि वहां नौनिहालों के क्या हाल हैं? योजना के मूल प्रावधानों में कहा गया है कि हर बच्चे, गर्भवती–धात्री महिला और किशोरी बालिका को बिना किसी भेदभाव या पात्रता मापदण्डों के साल भर में 300 दिन, पोषण आहार और अन्य सेवायें मिलना चाहिये पर मध्यप्रदेश में तो बजट का आवंटन ही 130 दिनों के लिये होता है और इसमें से भी 64 दिनों का हिस्सा भ्रष्टाचार लील जाता है। नियंत्रक महालेखाकार की जांच रिपोर्ट भी यह उल्लेख करती है कि मध्यप्रदेश में इस योजना में न केवल भ्रष्टाचार है बल्कि बच्चों को पूरा 300 कैलॉरी और 8 से 12 ग्राम प्रोटीन युक्त पोषण आहार नहीं मिलता है और 59 फीसदी बच्चे इससे वंचित हैं। न जाने क्यों भारत में सरकारी योजनाओं या सेवाओं का रूप ऐसा बना दिया जाता है कि उससे आम व्यक्ति कोई उम्मीद ही न रखे। सरकारी अस्पताल की बात करेंगे तो गंदी, बदबूदार, थुकी–बसी व्यवस्था और गंदे व्यवहार वाला केन्द्र और आंगनबाड़ी केन्द्र की बात करेंगे तो एक 8 गुणा 10 फिट का कमरा, जिसमें 80 बच्चों, 20 गर्भवती महिलाओं और 20 किशोरी बालिकाओं के बैठने की उम्मीद की जाती है। पोषण आहार बंटने पर असमानता और भिखमंगेपन का अहसास कराया जाता है ताकि अगली बार कोई भी हितग्राही अधिकार सम्पन्न होने की भावना न पाल सके।

बदकिस्मती की बात ही यह है कि शेयर बाजार और सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर को विकास का पैमाना मानने वाले विचारक यह मानते हैं कि कुपोषण और आंगनबाड़ी कार्यक्रम सरकार को चलाने ही नहीं चाहिये। यह संसाधनों की बर्बादी है क्योंकि इससे समुदाय में बैठे–बैठे खाने और सरकार से उम्मीदें पालने की आदत पड़ जाती है। उन्हें मेहनत करना सिखाया जाना चाहिय। परन्तु वे भूल जाते हैं कि बचपन में कुपोषण का आक्रमण बच्चों के 80 फीसदी शारीरिक और मानसिक विकास को अवरूद्ध कर देता है। दूसरे मायनों में कुपोषण का शिकार, बच्चे स्कूल में सीखने की क्षमता भी कमजोर हो जाती है और भविष्य में वह रचनात्मक भूमिका भी नहीं निभा सकता है। ऐसे में विकास के विचारकों को बच्चों के कुपोषण को तो अपना लक्षित मुद्दा बनाना ही पड़ेगा पर चिंता इस बात की है कि तब तक कहीं देर न हो जाये। मध्यप्रदेश को तमिलनाडु की तरह के. कामराज और एम. जी. रामचंद्रन जैसे राजनीतिज्ञ नही मिल पाये, जो बच्चों के पोषण को मानव विकास का आधार मानते थे, और आज तमिलनाडु में यह एक सफल कार्यक्रम है।

हमें यह स्वीकार कर लेना जरूरी है कि हम एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में रहते हैं जहां व्यवस्था में बदलाव राजनैतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से ही आता है किन्तु अब यह अमानवीयता की हद तक सहनशील होता नजर आ रहा है। विडम्बना यह भी है कि कुपोषण और बाल मृत्यु के मुद्दे कुछ वातानुकूलित मंचों पर जरूर नजर आ जाते हैं, कुछ विचारक और शोधकर्ता काम भी कर रहे हैं पर कोई राजनैतिक जमावड़ा सड़कों पर नजर नहीं आता।

लगातार हो रही बच्चों की भुखमरी पर यह लोकातंत्रिक व्यवस्था राजनैतिक संदभों में पूरी तरह से मौन है। हिंसक वारदातें नजर आती हैं परन्तु वह घटनायें बेहद व्यक्तिगत हैं जहां किसी ताकतवर परिवार में बच्चों की मौतें हो जाती हैं तो कुछ हलचल अस्पताल के प्रांगण में नजर आती हैं; इसके आगे बदलाव की कोई मांग नजर नहीं आती हैं। पिछला साल यूं ही खाली नहीं गया बल्कि मध्यप्रदेश सरकार के मुताबिक 30 हजार बच्चों को पहला जन्मदिन मनाने से पहले मौत की नींद सो जाना पड़ा। पांच साल से कम उम्र के 164000 बच्चों की मौत हुई पर किसी राजनीतिक दल ने जन मंच पर आकर एक वक्तव्य भी नहीं दिया, विकास के दावों के बीच मध्यप्रदेश में बच्चों में कुपोषण 54 प्रतिशत से बढ़कर 60 प्रतिशत पहुंच गया पर कोई राजनैतिक सवाल नहीं हुआ कि आखिर बच्चों के प्रति हमारे राजनैतिक दायित्व क्या हैं!!

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हर साल मध्यप्रदेश में दो लाख बच्चे 6 वर्ष से कम उम्र में मर जाते है। जिनमें से 1.20 लाख की मौत का कारण कुपोषण भी होता है ऐसे में हममें से किसी ने भी चुनावों के समय प्रदेश की 16 प्रतिशत आबादी के लिये कभी भी कोई चुनावी वायदा नहीं किया जाता कि सत्ता में आने के बाद इन बच्चों का पालनहार बनने की कोशिश राजनैतिक दल और सरकारें भी करेंगी। राजनैतिक प्रतिबद्धताओं और प्राथमिकताओं के मामले में यह बेहर निराशाजनक चित्र है परन्तु इसे बदलने की जद्दोजहद में हमें जुटाना पड़ेगा। राज्य में 1.06 करोड़ बच्चों, 40 लाख गर्भवती, धात्री महिलाओं और किशोरी बालिकाओं को पोषण–स्वास्थ्य का अधिकार दिलाने के लिए आंगनबाड़ी केन्द्रों का रूप, रंग और चरित्र बदलने की जरूरत है ताकि हर हितग्राही उसे अपना दूसरा घर माने और यहां से मिलने वाली सेवायें न केवल उनके तन को बल्कि मन को भी स्वस्थ बनाये।

महंगाई और गरीबी के बदलते चेहरों ने राशन की दुकान और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को तो राजनैतिक मुद्दा बना दिया है क्योंकि अब थाली का एक तिहाई हिस्सा भरने के लिए सस्ता राशन बेहद महत्वपूर्ण हो गया है। अब तीन साल पहले केवल गरीबी की रेखा के ऊपर रहने वाले परिवार रोशन की दुकान जाकर अपने कोटे के राशन ले लेते थे क्यों कि तब सरकारी और खुले बाजार के राशन के दामों के लगभग समानता होती थी किन्तु पिछले दो सालों में यह मांग भी बनी है क्योंकि गेहूं पर 5 रुपये का अंतर आ गया है परन्तु, सरकार तो मानों धीरे जहर का काम कर रही है। मांग बढ़ने के बावजूद उसने राशन की दुकानों का आंवेटन नहीं बढ़ाया। आज यह एक राजनीतिक मुद्दा है क्योंकि इससे वयस्क समाज की भूख जुड़ी हुई है।

कुपोषण और बच्चों की खाद्य सुरक्षा का मुद्दा एक तकनीकी विषय हो सकता है किन्तु सामाजिक संदर्भों में यह बच्चों के मानव अधिकारों के हनन् का मामला बनता है जिसे हमारी राजनीति नज़र अंदाज करती है। आंगनवाड़ी तक पोषण आहार न पहुंचने का मुद्दा विधायकों और सांसदों के लिए तवज्जो का विषय नहीं होता है क्योंकि उन्हें लगता है कि बच्चों की बात करने पर तो अखबार वाले भी खबर नहीं छापते हैं। इसलिये उस पर बात करना निरर्थक है। फिर मसला यह भी है कि कुपोषित बच्चे तो सड़क पर उतर कर नारेबाजी भी नहीं कर सकते हैं; वे तो केवल उनकी तरफ देखते हैं जो जवाबदेहिता के जरिये बदलाव ला सकते हैं।

बाल पोषण के मुद्दे को सामाजिक ढांचे में एक दोयम दर्जे की जरूरत माना जाता है। इसमें भी बच्चों, महिलाओं और लड़कियों की जरूरतें पूरी करने की जिम्मेदारी आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में एक महिला को दी गई है। उससे अपेक्षायें खूब सारी हैं पर उसे अपने भारी कौशलपूर्ण–शारीरिक श्रम के एवज में न्यूनतम मजदूरी से भी कम मानदेय दिया जाता है। और पूरा सरकारी विभाग बच्चों के अधिकार के हनन् का बोझ उस आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के ऊपर डाल देता है, जिसके पक्ष में कोई कानूनी और सामाजिक व्यवस्था नहीं है। वह बेहद सामाजिक–राजनीतिक रूप से जटिल वातावरण में काम करती है।

यह एक अहम् मसला है कि राजनीति न केवल बच्चों के प्रति उदासीन है बल्कि सरकार के गलत कदमों पर प्रतिक्रिया भी व्यक्त नहीं करती है। मध्यप्रदेश में वर्ष 2002 में स्वयं सहायता समूहों के जरिये पोषण आहार की आपूर्ति की नीति बनाई गई थी। एक साल तक यह लागू नहीं हो पाई और वर्ष 2004 में इसे ठेकेदारों को सौंपने के लिऐ टेण्डर जारी कर दिये गये। यह सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन था। वर्ष 2006 में फिर एक नई योजना बनी जिसमें स्थानीय स्वयं सहायता समूहों को शामिल करने का विचार आया और वर्ष 2007 में राज्य मंत्रीमंडल ने मातृ सहयोगिनी समिति को पोषण आहार बनाने का निर्णय लिया गया। इसके बाद विभाग के मंत्री ने ही मंत्रीमण्डल के निर्णय को किनारे रखते हुये यह व्यवस्था खत्म कर दी। पिछले 6 वर्षों में 6 तरह की व्यवस्थायें बनीं। इनमें से एक भी ठीक से लागू नहीं हो पाई और इन्हें बदला जाता रहा। इससे न तो बच्चों को नियमित रूप से पोषण आहार मिल पाया न ही स्वयं सहायता समूह और महिला मण्डल ही सक्रिय हो पाये, ये दोनों लुड़क रहे हैं गैर जवाबदेय व्यवस्था के मैदान में। यहां न तो मंत्रीमण्डल के निर्णयों का सम्मान है न ही सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का। इसका खामियाजा बच्चे भुगत रहे है। यही कारण है कि राज्य में कुपोषण बढ़ रहा है।

✍ **सचिन कुमार जैन**

कुपोषण का तांडव : दर्जनों बच्चों की मौत

मध्यप्रदेश के सतना जिले के उचेहरा और मझगवां विकासखंड़ में कुपोषण से होने वाली मौतों का सिलसिला बदस्तूर जारी है। मई माह में उचेहरा विकासखंड के हरदुआ और नकझीर गांव में पांच बच्चों से होने वाली मौतों की संख्या बढ़कर अब 45 से ज्यादा हो चुकी है। प्रशासन यह मानने को तैयार नहीं है कि ये मौतें कुपोषण से हुई हैं और वह इन मौतों को रोकने के लिये तत्पर भी नहीं दिखाई देता है। नतीजतन कुपोषण ग्रसित इन नौनिहालों की आंखें असमय ही हमेशा के लिये मुंदती जा रही हैं। ज्ञात हो कि सतना जिले में कुपोषण से मरने वाले बच्चों में से 80 प्रतिशत बच्चे आदिवासी हैं।

हरदुआ और नकझीर गांवों में कुपोषण की स्थिति ऐसे ही निर्मित नहीं हो गई है वहां पर रोजगार गारंटी योजना के तीन वर्षों में गांव के लोगों को लगातार काम मांगने पर भी महज दो दिन का ही रोजगार मिला, विगत 4 माह से राशन की दुकान से राशन का वितरण नहीं हुआ, सूखे की मार अलग है और दूसरी ओर इसी समय नौनिहालों को एकमात्र पोषणाहार पाने के माध्यम आंगनवाड़ी में भी फरवरी माह से ही पोषणाहार नहीं था। जब कुछ नहीं था तब तो ये होना ही था। भोजन का अधिकार अभियान और मध्यप्रदेश लोक संघर्ष साझा मंच के संयुक्त तथ्यान्वेषण दल ने जब प्रभावित गांवों का दौरा किया तो पाया कि गांव के 30 प्रतिशत बच्चे गंभीर रूप से कुपोषित हैं, जबकि प्रशासन ने आनन–फानन में प्रेस वार्ता कर यह कहा कि गांव के केवल 4 ही बच्चे कुपोषित हैं, सवाल यह भी है कि जब चार ही बच्चे कुपोषित थे तो उस गांव के आंगनवाड़ी का रजिस्टर आठ बच्चों को गंभीर कुपोषित क्यों बताता है। साथ ही यदि 4 बच्चे ही कुपोषित थे तो फिर प्रशासन ने 5 बच्चों को पोषण पुर्नवास केन्द्र में कैसे भिजाया ?

कलेक्टर ने भेजी रिपोर्ट

कलेक्टर विजय आनंद कुरील ने उच्चतम न्यायालय के आयुक्त के सलाहकार डॉ. मिहिर शाह द्वारा चाही गई रिपोर्ट, जिसमें बच्चों की मौतों के कारण तथा इस संबंध में उठाये जा रहे तात्कालिक व दीर्घकालिक प्रयासों का भी जिक्र करना था की रिपोर्ट अब पहुंचा दी है। कलेक्टर का कहना है कि वे दूसरे कामों में व्यस्त थे, इसलिये उन्होंने रिपोर्ट समय पर नहीं पहुंचाई। इस रिपोर्ट के आधार पर जांच दल को भी वास्तविक वस्तुस्थिति से आयुक्त को अवगत कराना है।

दल ने बच्चों की मौतों के इस प्रकरण को उच्चतम न्यायालय के आयुक्त के सलाहकार डॉ. मिहिर शाह को भी पहुंचाया गया। उच्चतम न्यायालय ने भी इस घटना के संबंध में जिलाधीश से 15 जुलाई तक लिखित में रिपोर्ट मांगी। पर जिला प्रशासन ने यह रिपोर्ट समय सीमा में नहीं भेजी बल्कि उच्चतम न्यायालय के इस हस्तक्षेप के बाद प्रशासन ने ताबड़तोड़ शिविर लगवाने शुरू किये और कुपोषण हटाने की सारी कवायद इन शिविरों के माध्यम से ही करना शुरू किया। इन शिविरों की भी हकीकत यही है कि ये शिविर भी प्रभावित गांवों से 5 किलोमीटर दूर लगाये गये तथा इन शिविरों से भी एक्सपायरी डेट की दवायें वितरित की गईं। दबावों के बाद प्रशासन ने पूरी कवायद की और कुछ समय पहले ही आयुक्त कार्यालय में रिपोर्ट भेजी।

प्रशासन की सारी ऊर्जा इस बात पर खर्च हो रही है कि कैसे यह सिद्ध किया जाये कि ये मौतें कुपोषण के कारण नहीं हुई। कलेक्टर ने 15 जुलाई को ही हरदुआ गांव का दौरा किया तथा राजनेताओं के अंदाज में घोषणायें कर डालीं, जैसे कि प्रत्येक परिवार को 90 दिन का काम दिया जायेगा, प्रत्येक मृतक बच्चे के परिवार को 65–70 किलोग्राम अनाज उपलब्ध कराया जायेगा, राशन दुकान संचालक को निलंबित किया गया तथा उन्होंने आंगनवाड़ी भवन की नींव भी रखी। लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात।

लोगों को काम तो मिला लेकिन सात दिन बाद बंद। मजदूरी के 89250 रुपये का भुगतान भी समय पर नहीं। आंगनवाड़ी भवन में तीन क्विंटल दलिया पहुंचा दिया गया, ताकि यह दिखाया जाए कि आंगनवाड़ी में पोषणाहार मौजूद है और जांच दल भी आये तो उसे वह दिखाई दे जो प्रशासन दिखाना चाहता है। सवाल यही है कि जब प्रशासन यह मान ही नहीं रहा है कि मौतें कुपोषण से नहीं हुई हैं तो फिर यह प्रशासन ने अनाज क्यों भिजाया

तथा उसे किस मद से भिजवाया? जब रोजगार गांरटी कानून के अनुसार प्रत्येक परिवार को 100 दिन का रोजगार पाने का अधिकार है तो क्या फिर ऐसे में जिलाधीश 90 दिन के रोजगार की घोषणा कर कानून का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं? जब आंगनवाड़ी में इतना दलिया रखने की जगह ही नहीं हैं तो फिर बारिश के मौसम में इस तीन क्विंटल दलिया को बचाने के क्या इंतजाम हैं? यह किसी को नहीं मालूम। मजदूरी का भुगतान भी समय पर नहीं देना और काम बंद भी बंद कर देना, क्या यह प्रशासन की लापरवाही नहीं है? राशन की व्यवस्था दूसरे गांव से शुरू की गई थी लेकिन जुलाई व अगस्त माह में भी लोगों को राशन का वितरण नहीं हुआ। बीपीएल सूची में नाम जोड़ने तथा पेंशन देने की भी कवायदें शुरू हो गई हैं। सवाल यह है कि यदि ये सब कुछ हो गया है, तो फिर मौतें क्यों हो रही हैं? साथ ही ये समस्त प्रयास केवल चुनिंदा गांवों में ही क्यों किये जा रहे हैं?

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण – तीन की रिपोर्ट के अनुसार मध्यप्रदेश में कुपोषण का प्रतिशत 54 से बढ़कर 60 हो गया है, जो कि देश में मध्यप्रदेश को नंबर 1 पर लाता है। ऐसा नहीं कि सतना जिले में यह मौतें इसी साल ही हुई हैं बल्कि वर्ष 2006–07 में 2060 वर्ष 2007–08 में 1668 तथा वर्ष 2008–09 में जुलाई तक 410 बच्चों की मौतों के सरकारी आंकड़े उपलब्ध हैं। सतना के सभी आंकडे वे हैं जो कि प्रदेश में सबसे ज्यादा हैं अर्थात् सतना जिला अव्वल रहा है।

संगठनों ने भिजाया कर्णधारों को पत्र

संगठन ने मध्यप्रदेश में बच्चों की लगातार होती मौतों और प्रदेश सरकार की चुप्पी को लेकर भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह, केन्द्र में नेता प्रतिपक्ष लालकृष्ण आडवाणी सहित प्रदेश में विपक्ष की नेता सुश्री जमुना देवी तथा प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष सुरेश पचौरी को भी पत्र लिखे है। इसके अलावा कई संबंधित विभागों के अधिकारियों को भी इस संबंध में पत्र लिखे गये हैं।

बच्चों की मौतों के सवाल पर जिले के मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी डॉ. आर. एस. पाण्डेय का कहना है कि सतना दस्यु प्रभावित क्षेत्र है, इसलिये कठिनाई आती है। जिला महिला एवं बाल विकास अधिकारी एम.एल. मेहरा कहते हैं कि कुपोषण से कोई भी मौत नहीं हुई हैं। इस सवाल पर कि कुपोषित बच्चों को पोषण पुनर्वास केन्द्र क्यों नही लाया जाता है, वे कहते हैं कि सतना जिले में एक ही पोषण पुनर्वास केन्द्र हैं और इसमें 20 बिस्तर हैं। इन 20 बिस्तरों पर ही पूरे जिले का दारोमदार है। हर समय बिस्तर भरे रहते हैं और टर्न आने पर ही बच्चों को यहां लाया जाता है।

इस संबंध में जांच दल ने तीन बार (मई, जून, तथा जुलाई में) पोषण पुनर्वास केन्द्र का दौरा किया और तीनों ही बार यहां पर बिस्तर खाली पाये गये। गांवों में एक ओर तो बच्चे मर रहे हैं दूसरी ओर उन्हें पोषण पुनर्वास केन्द्र भी नहीं लाया जा रहा है। यानी मरते हुए बच्चे पोषण पुनर्वास केन्द्र में आने के लिए अपनी बारी का इंतजार करें और बारी न आ पाये तो मर जायें? इसके अलावा सरकार के पास अन्य कोई ठोस इंतजाम नहीं दिख रहा है?

इस संबंध में पिछले दिनों 24 अगस्त को मझगवां में आदिवासियों ने एक सम्मेलन का आयोजन किया। यह सम्मेलन आदिवासी अधिकार मंच के बैनर तले आयोजित किया गया। इसमें दलित–आदिवासियों ने कहा कि यदि हमारे बच्चे यूं ही मरते रहें तो उक्त क्षेत्र के 150 गांवों के लोग आगामी विधानसभा चुनावों में चुनाव का बहिष्कार करेंगे। जो पार्टी हमारे बच्चों के, हमारी महिलाओं के व समुदाय के स्वास्थ्य की बात करेंगे, हम उन्हें ही वोट देंगे। आदिवासियों ने कहा कि हमारी जमीनों की नाप नहीं होती हैं, रोजगार गारंटी के कामों की मजदूरी नहीं मिलती तथा सामुदायिक स्वास्थ्य के अधिकारों को तवज्जों नहीं दी जाती है। चितहरा के बंदे लाल कोल ने सम्मेलन में बताया कि उनके यहां आंगनवाड़ी बंद हैं, बच्चों को पोषणाहार नहीं मिल रहा है, राशन दुकानों से राशन नहीं मिलता है। उन्होंने कहा कि सरकार कहती है कि गरीब की थाली, नहीं रखेगी थाली, लेकिन हमारे गांव में तो गरीब की थाली, खाली की खाली। सम्मेलन के मुख्य अतिथि उत्तरप्रदेश के ग्रामीण विकास मंत्री श्री ददू प्रसाद ने कहा कि हम मजदूरों की इस लड़ाई में साथ हैं। हम मध्यप्रदेश में मुख्यमंत्री जी के पास पत्र लिखकर बातचीत करेंगें। आदिवासियों ने क्षेत्र की प्रमुख 17 मांगों को लेकर एक ज्ञापन भी प्रशासन को सौंपा।

सतना में कुपोषण का मामला तूल पकड़ते जा रहा है। कुपोषण पर प्रशासन के नकारात्मक रवैये को लेकर पिछले दिनों सतना में कुपोषण से मृतक बच्चों को श्रद्धांजलि देने तथा प्रशासन को सद्बुद्धि देने के लिये विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं, संगठनों के साथियों, विभिन्न धर्मों के धर्मगुरूओं और जनसामान्य ने गांधी प्रतिमा के समक्ष एकत्र हुये। यहां उन्होंने सर्वधर्म प्रार्थना सभा की। इसमें मृतक बच्चों के परिवारजन भी सम्मिलित हुये। सभा में उपस्थित इस्लाम, सिक्ख, हिन्दू एवं ईसाई धर्म के धर्मगुरूओं ने कुपोषण से काल के गाल में चले गए बच्चों की आत्मा की शांति के लिए पाठ किया। अंत में उपस्थित लोगों ने दो मिनट का मौन रखकर मृतक बच्चों के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त की।

भोजन का अधिकार अभियान, सहयोगी समूह का कहना है कि इसे राज्य प्रायोजित मौतें मानना चाहिए क्योंकि राज्य को बार–बार चेताने के बाद भी ये मौतें लगातार होती जा रही हैं। प्रशासन अपनी सारी ऊर्जा मौतों को रोकने में नहीं, बल्कि कुपोषण को नकारने में खर्च कर रहा है। मध्यप्रदेश लोक संघर्ष साझा मंच के आनंद का कहना है कि महिला एवं बाल विकास विभाग कहता है कि ये मौतें कुपोषण से नहीं हुई हैं बल्कि बीमारी से हुई हैं। वहीं स्वास्थ्य विभाग इसे अपनी जिम्मेदारी नहीं मानता है। ऐसे में सवाल यह है कि बच्चे किस विभाग की जिम्मेदारी हैं? विभाग एक दूसरे पर अपनी जिम्मेदारी थोप रहे हैं और मासूमों की आंखें मुंदती चली ही जा रही हैं।

✍ **प्रशांत दुबे**

मार्च 2008 के विमर्श में प्रकाशित आलेख की प्रति

विमर्श के पहले अंक में हमने मझगवां में कुपोषण की स्थिति को लेकर एक समाचार प्रकाशित किया था, उसमें यह चेताया था कि वहां कुपोषित बच्चों की मौत हो सकती है, पर सरकार ने वहां कुछ नहीं किया। आखिर क्या हुआ, यह बात किसी से छिपा नहीं है।

मझगवां में कुपोषित बच्चों की मौत तय

एन.एफ.एच.एस.–3 के अनुसार मध्यप्रदेश राज्य में हर दूसरा बच्चा कुपोषित है। इस सर्वे को झूठा कहकर सरकार ने अपने सभी जिलों व ब्लाकों में बालशक्ति परियोजना के संचालन की बात की, एवं यह तर्क दिया कि हम बाल संजीवनी अभियान के माध्यम से वर्ष मे दो बार बच्चों का पूरा परीक्षण कराते हुए पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्रदाय कर रहे हैं। इसके लिए कई विभागों को सम्मिलित करते हुए कार्ययोजनायें बनाई गई है। हमारे पास हर एक बच्चे की सही व पूर्ण जानकारी है। दूसरी तरफ मझगवॉ ब्लाक के 10 गॉवों के आंकड़ों को देखें तो पता चलता है कि इन ग्रामों मे कुपोषण का प्रतिशत प्रदेश के प्रतिशत से कहीं ज्यादा है। इसका कारण मात्र गरीबी ही नही है। इसका कारण कुपोषण को दूर करने व बच्चों की पूर्ण सुरक्षा का जिम्मा उठाने वाले विभाग भी हैं। इन अंचलों में कई आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं ने नाम न जाहिर करने की शर्त पर बताया कि हमें विभाग से हर केन्द्र में मात्र 2–3 बच्चों को ही अतिकुपोषित की श्रेणी मे ही रखने का आदेश है। इसलिए हम सर्वे के बाद अधिकतर बच्चों का नाम गंभीर कुपोषित की सूची से हटाकर साधारण कुपोषण की श्रेणी मे रख देते है।

दूसरी तरफ इसका कारण जानने पर पता चला कि बाल शक्ति परियोजना के तहत् चिन्हित अति कुपोषित बच्चों के लिए 14 दिवसीय चिकित्सीय कैंप मझगवॉ ब्लाक में मात्र कागजों मे संचालित किये जाते हैं। मगर बजट की उपयोगिता प्रतिवर्ष भेजी जाती है। ऊपरी अधिकारियों के असंवेदनशील व्यवहार के कारण अब ऑगनबाड़ी कार्यकर्ता भी इस बोझ से पीछा छुड़ाते हुए गांव मे ही रहना चाहती है। मगर ऐसी स्थिति में किसी ने नही सोचा कि उन गंभीर कुपोषित बच्चों का क्या होगा? जिनके जीवन का जिम्मा इन असंवेदनशील कर्मचारियों व अधिकारियों के ऊपर छोड़ा गया है।

समुदाय ने ली कुपोषण मिटाने की जिम्मेदारी

अब यहां कुपोषित बच्चे नहीं मरते है, कुपोषित बच्चों की सूची पंचायतों में लगाई जाती है और समुदाय व पंचायत सदस्य उन्हें गोद ले लेते हैं। उनकी देखभाल होती है और उन्हें पोषण पुनर्वास केन्द्र पर भिजाया जाता है। स्थानीय अनाज का उपयोग कर अनाज किट बनाया गया है। प्रसव किट भी बनाया गया है और महिलायें उसका इस्तेमाल भी करती है। बालाघाट जिले में हो रहे इस अभिनव प्रयास से एक उम्मीद जगी है। जहां एक ओर तो सरकार अपनी सारी ऊर्जा इस बात को नकारने में लगा रही है कि कुपोषण ही नहीं हैं। वहीं बालाघाट जिले में ग्रामीण जन चुपचाप कुपोषण को समुदाय का सवाल बनाकर अब सरकार की जवाबदेहिता तय करने में लगे है। समुदाय ने जन प्रतिनिधियों को भी कुपोषण के प्रति अपने कर्त्तव्य का बखूबी भान कराया है। सवाल यह है कि बालाघाट जिले का यह गुपचुप प्रयास सरकार कब देखेगी और पूरे प्रदेश में इसको अपनाने की प्रक्रिया चलायेगी।

जहां पूरे मध्यप्रदेश में बच्चों के कुपोषण से मरने की खबरें सामने आ रही हैं, वहीं बालाघाट जिले की बैहर विकासखंड से 15 किलोमीटर दूर गोहरा पंचायत के बैगानटोला की सुकवारो बाई अपने चार बच्चों के पिछल (खत्म हो जाने) जाने के बाद पांचवीं बार उम्मीद से है। सुकवारों बाई, बैगा जनजाति की है, जो कि प्रदेश की अत्यंत पिछड़ी तीन जनजातियों बैगा, भारिया और सहरिया में से एक है। सुकवारो बाई को इस बार उम्मीद से होने पर उसे जब टीके लगाने के लिये आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्वास्थ्य कार्यकर्ता ने बुलाया तो वह जंगल भाग गई। उनके साथ लगातार बातचीत करने और समझाईश पर सुकवारों बाई ने न केवल सारे टीके लगवाये बल्कि प्रसव भी शासकीय अस्पताल में जाकर कराया। उसने एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया । बच्चे को भी लगे हैं सारे टीके और मां और बेटा आज दोनों स्वस्थ हैं।

वहीं करवाही पंचायत के बैगाटोला में आज से चार वर्ष पूर्व टीकाकरण का प्रतिशत शून्य था। आज वहां 98 प्रतिशत टीकाकरण होता है। यह सुनने में अजीब लग सकता है लेकिन गांव के पंच बंसीलाल तिलगाम ने आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के साथ मिलकर गांव में अलख जगाई और यह कर दिखाया। आज बैगाटोला के सभी बच्चों को पूरे टीके लगे हैं और वे स्वस्थ हैं। ऐसे अकेले दो गांव नहीं हैं, बल्कि ऐसे कई गांव हैं, जहां पर लोगों ने स्वास्थ्य के महत्व को जाना है । जच्चा, बच्चा के साथ–साथ सामुदायिक स्वास्थ्य की ओर भी अब ध्यान देना शुरू किया है। गांव के लोगों ने सहभागी तरीके से स्वास्थ्य नियोजन करना शुरू किया है।

आज से चार वर्ष पूर्व बालाघाट जिले के चार विकासखंड़ों बैहर, लांजी, लालबर्रा व बालाघाट में स्थानीय स्तर पर काम करने वाली संस्था कम्यूनिटी डेव्हलपमेन्ट (सीडीसी) सेण्टर ने केयर के साथ मिलकर आईएनएचपी (इंटीग्रेटेड न्यूट्रीशन एंड हेल्थ प्रोजेक्ट) परियोजना पर काम शुरू किया। आईएनएचपी परियोजना का मुख्य उद्देश्य बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य में गुणात्मक परिवर्तन लाना है। कम्यूनिटी डेव्हलपमेन्ट सेण्टर के निदेशक अमीन चार्ल्स कहते हैं कि जबकि यह एक पिछड़ी जनताति वाला क्षेत्र था, इसलिये यहां काम करना बेहद चुनौतीपूर्ण था, फिर भी हमने यह बीड़ा उठाया और चुनौती को स्वीकार किया। चार्ल्स कहते हैं कि हमने परियोजना के शुरूआत में आंगनवाड़ियों कार्यकर्ताओं का ओरियेंटेशन कर उनकी क्षमतावृद्धि की। इसके साथ–साथ नुक्कड़ नाटकों, बैनर, पोस्टर के माध्यम से समुदाय में जागरूकता लाने का प्रयास किया।

चूंकि अभी तक महिला एवं बाल विकास विभाग व स्वास्थ्य विभाग में आपसी समन्वय नहीं था, इसलिये यह काम कठिन था। यदि कहीं आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अपना काम बेहतरी से कर रहीं हैं तो फिर स्वास्थ्य कार्यकर्ता टीकाकरण व अन्य कामों को महत्व नहीं देती थीं तो समग्रता में महिला एवं बाल स्वास्थ्य पर काम करना कठिन हो रहा था। हमने सबसे पहले आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की सेक्टर मीटिंग में स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की उपस्थिति सुनिश्चित करवाई और ऐसे ही स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की मीटिंग में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की उपस्थिति सुनिश्चित करवाई। इन बैठको से जहां एक ओर तो दोनों विभागों के बीच तालमेल बना, वहीं गांव की स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें व आवश्यकतायें निकल कर सामने आने लगीं।

सीडीसी में काम कर रहीं ममता बताती हैं कि उनके यहां पर कुपोषित बच्चे ज्यादा मिलते थे, जिसके कारण यहां पर शिशु व बाल मृत्यु दर के प्रकरण बहुत ज्यादा थे, अतएव हमने यहां पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ कुपोषित बच्चों के लिये विशेष प्रयासों को लेकर कार्यशालायें कीं। कार्यकर्ताओं ने भी ये बताया कि जो स्थानीय भोज्य पदार्थ हैं, उसमें ही प्रोटीन/आयरन और वसा की प्रचुरता है, बशर्ते उसका सही इस्तेमाल किया जाये। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के सामने यह समस्या आई कि गांव वालों को बेहतर प्रयोग करना कैसे सिखाया जाये। इसके लिये यहां पर तैयार किया गया पोषणाहार किट। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता व गांव वाले इसे अनाज किट के नाम से भी जानते हैं। इस अनाज किट में चावल, मक्का, दालें (चना,उड़द व तुअर), चना, मूंगफली, मुरमुरा व गुड़ के साथ–साथ तेल भी रखा गया है। स्वास्थ्य कार्यकर्ता बताती हैं कि केवल कुपोषित बच्चे ही नहीं बल्कि गर्भवती माताओं की मृत्यु भी एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आ रही थी। हमने गर्भवती माताओं को समझाईश देना शुरू किया कि प्रसव घर में नहीं होना चाहिये। यदि घर में प्रसव कराना जरूरी भी हो जाये तो प्रशिक्षित दाई से ही कराया जाना चाहिये। इसके अलावा प्रसूति के समय प्रसूता के पास पांच चीजें धागा, साफ कपड़ा,साबुन, आयरन टेबलेट तथा नई ब्लेड होनी अनिवार्य ही हैं। इन पांच चीजों के प्रदर्शन के लिये कार्यकर्ताओं ने प्रसव किट बनाना शुरू किया। जब–जब आंगनवाड़ी में मंगल दिवस मनाया जाता है, तब गोद भराई के समय गर्भवती महिला को प्रसव किट बनाना सिखाया जाता है । इसी दिन महिला को यह शपथ दिलाई जाती है कि वह अपनी डिलेवरी अनिवार्य रूप से अस्पताल में ही करायेगी और यदि नही तो फिर प्रसव किट का उपयोग आवश्यक है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता विमला मेश्राम कहती हैं कि पहले हम आयरन फोलिक ऐसिड की गोलियां देते थे, तो वे फेंक देती थीं, परन्तु अब महिलाओं ने इन्हें न केवल खाना शुरू किया है बल्कि वे अब औरों को भी सलाह देती हैं। मध्यप्रदेश में शायद बालाघाट ही एकमात्र ऐसा जिला है जहां पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की यूनिफॉर्म है। यहां पर आंगनवाड़ी केन्द्र अब बाल अधिकार केन्द्र के रूप में विकसित हो रहे हैं।

परियोजना समन्वयक सतीश जैन बताते हैं कि नवाचारों का यह सिलसिला यहीं नहीं थमता है, हमने यह कोशिश की कि कुपोषित बच्चों का नाम पंचायत में चस्पा हो और कुपोषित बच्चों की जिम्मेदारी पंचायतें लें। शुरुआत में तो यह करना बहुत कठिन था। पंचायतों के साथ लगातार संवाद करके हमने यह कोशिश की कि यह संभव हो सके। धीरे–धीरे पंचायतों ने भी इस पर रुचि दिखाते हुये बच्चों को गोद लेने की प्रक्रिया शुरू की। पंचायत व पंचायतों के अन्य सदस्यों के साथ मातृ सहयोगिनी समितियों के साथ काम किया गया। अब पंचायतों में गांव के सभी कुपोषित बच्चों की सूची लगती है। बोदा जैसी पंचायतों के सरपंच सीमा मेश्राम ने अपने स्वयं के पैसों से बच्चों को दूध व अलग–अलग पोषणाहार का वितरण करके बच्चों को गंभीर कुपोषण से बाहर लाकर सामान्य अवस्था में लाने का प्रयास किया। परियोजना के प्रभावों से बालाघाट जिले में कुपोषण में 6 प्रतिशत तक की कमी आई है। पोषणाहार की समझाईश देकर अतिगंभीर कुपोषित बच्चों को वे पोषण पुर्नवास केन्द्र में भी भिजाते हैं।

निर्मला उईके, जो कि छिन्दीटोला की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता हैं, उनका कहना है कि पहले जरूर काम करने में दिक्कत आती थी, अभी हम लोग भी बेहतर तरीके से काम करने लगे हैं। हमने स्वास्थ्य विभाग के साथ समन्वय कर ज्यादा चीजों को बेहतर किया है, साथ ही हमारी अब एक पहचान भी है। महिलाओं में बच्चों को जन्म के समय व पूर्ण रूप से दूध पिलाने की प्रवृत्ति 60 प्रतिशत् हो गई है, जो कि पूर्व में क्रमशः 40 व 23 प्रतिशत था।

एक ओर जहां मध्यप्रदेश में चारों और से कुपोषण से बच्चों के मरने की खबरें आ रही हैं, वहीं बालाघाट जिले में सीडीसी व केयर के संयुक्त प्रयासों से समुदाय भी जागरूक हुआ है, और पिछले दो वर्षों में कुपोषण 6 प्रतिशत तक कम हुआ है। लोगों ने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भोजन को अपनाना शुरू किया है। इन प्रयासों से एक चीज तो सिद्ध होती है कि जहां एक ओर तो सरकार अपनी सारी ऊर्जा इस बात को नकारने में लगा रही है कि कुपोषण ही नहीं हैं। वहीं बालाघाट जिले में ग्रामीण जन चुपचाप कुपोषण को समुदाय का सवाल बनाकर अब सरकार की जवाबदेहिता तय करने में लगे है। समुदाय ने जन प्रतिनिधियों को भी कुपोषण के प्रति अपने कर्त्तव्य का बखूबी भान कराया है। अब सवाल यह है कि बालाघाट जिले का यह गुपचुप प्रयास सरकार कब देखेगी और पूरे प्रदेश में इसको अपनाने की प्रक्रिया चलायेगी।

✍ **प्रशांत दुबे**

2. विस्थापन एवं वन अधिकार

विस्थापन का "जंगल राज"

इस वर्ष भारत ने स्वतंत्रता की 61वीं वर्षगांठ मनाई, पर क्या वाकई में हर भारतीय को स्वतंत्रता का अधिकार मिल पाया है? भारत की लगभग 8.3 प्रतिशत ;1991 की जनगणना के अनुसार आबादी आदिवासी समुदायों से है और आज भी इन समुदायों को अपने हिसाब से जीवन जीने की स्वतंत्रता नहीं है। सदियों से दलितों, आदिवासियों, खेतीबाड़ी में लगे किसानों, मछुआरों और जंगल में रहने वाले लोगों को अनेकों विकासशील परिवारों जैसे बड़े बांध, औद्योगिक संरचनाएं, खदानें या अभ्यारण्यों के नाम पर अपनी पुश्तैनी जमीनों से/अपने खेतों से बेदखल किया जा रहा है। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि किसके दम पर किसका विकास ? जिस रफ्तार से भारत विकास और आर्थिक लाभ की दौड़ में भागा जा रहा है उसी रफ्तार से शहरों और गांवों में हाशिये पर रह रहे लोगों को विस्थापन की मार झेलना पड़ रही है। न घर का ठिकाना, न ही जीविका का ठिकाना और जो भी थोडी बहुत सम्पत्ति या पशुधन आदि उनके पास है वो भी सब छिन जाते हैं। ऐसे में अधिकारों की बात करना बेमानी है । सरकार इप प्रक्रिया को व्यवस्थापन कहती है जबकि यह सही मायनों में विनाश ही है। ऐसे ही विस्थापन बनाम व्यवस्थापन की मार झेल रहे हैं पन्ना टाईगर रिजर्व के कोर क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी ।

पन्ना टाईगर रिजर्व 542ण्67 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है तथा इसमें दो जिलों पन्ना एवं छतरपुर के गांव (क्रमशः 8 एवं 7) शामिल हैं। पन्ना टाईगर रिजर्व का सम्पूर्ण क्षेत्र कोर एरिया में आता है अतः यहां अभ्यारण्यों को बचाने एवं टाईगर से इंसानों और इंसानों से टाईगर की हिफाजत के लिये कोर एरिया में बसे गावों को दूसरी जगह एक आकर्षक पैकेज के साथ विस्थापित किये जाने की प्रक्रिया चल रही है। अभ्यारण्य और टाईगर रिजर्व कुदरत के बेशकीमती नगीनों को सहेजे रखने की एक नायाब पहल है। वैज्ञानिक भाषा में कहें तो जंगली जानवर और इन्सानों का आपस में गुंथा पडा यह बारीक ताना बाना एक मजबूत ईको सिस्टम यानी पारिस्थितिकी तंत्र को जन्म देता है। और यह अल्टीमेट सिस्टम हम सब की खुशहाली ही नहीं बल्कि अस्तित्व के लिये भी बेहद जरूरी है। पर अफसोस कि जिस सोच और तौर तरीकों की बुनियाद पर आज यह नये अभ्यारण्य व टाईगर रिजर्व खडे किये जा रहे हैं वह अन्दर से इतने अराजक और अमानवीय हैं कि इस सारे तामझाम के औचित्य पर ही सवाल खडे होने लगे हैं, पर जंगल राज की इस आपाधापी में यह हकीकत भुला दी गई है कि जिन जंगल और जानवरों के बूते हम फूलकर कुप्पा बने बैठे हैं वह इन्हीं गरीब आदिवासियों के बचाये हुये हैं और आज भी आंख दिखाकर जिन जमीनों का अधिग्रहण कर यह राज पाट फैलाया जा रहा है उसके मालिक भी ये गरीब आदिवासी ही हैं जिनका इन जंगलों से जन्म जन्मान्तर का नाता रहा है। पर जंगल के हुक्मरानों को इनसे कोई सरोकार ही नहीं है। जंगल और जानवरों के सिवाय उन्हें कुछ नहीं सूझता। इसके लिये मानवीय मूल्यों को बुझाना भी पड़े तो चलेगा। देश का भविष्य कहे जाने वाले बच्चों तक के भविष्य से खिलवाड किया जा रहा है। जिसे ना तो जिला प्रशासन ही देख पा रहा है और न ही प्रदेश शासन।

पन्ना टाईगर रिजर्व के कोर क्षेत्र में स्थित ग्राम झालर एवं खमरिया के आदिवासी भी विस्थापन की मार से परेशान हैं। मार्च–अप्रैल 2005 में इन दोनों गांवों से 43 परिवारों को जनवार पंचायत के समीप न्यू–झालर गांव में विस्थापित किया गया। विस्थापन के पूर्व इन परिवारों को यह आश्वासन दिया गया था कि इन्हें 5–5 एकड़ उपजाऊ जमीन, और सुव्यवस्थित मकान के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सिंचाई तथा आवागमन के संसाधनों से परिपूर्ण गांव में विस्थापित किया जाएगा जहां ये लोग एक बेहतर जिंदगी जी सकें तथा आने वाली पीढ़ी को भी एक उज्ज्वल भविष्य दिया जा सकेगा, किन्तु हकीकत कुछ और ही है।

इन 43 परिवारों को बगैर किसी पूर्व सूचना के जंगल विभाग के वाहन में लादकर न्यू–झालर गांव में लाकर उतार दिया गया। न्यू–झालर को गांव की जगह यदि टीला या पहाड़ी कहा जाए तो ज्यादा सही है। न्यू–झालर ढालू

जमीन में स्थित है तथा यहाँ की जमीन भी पत्थरों से लबरेज़ है। यहां की जमीन में खेती तो नहीं की जा सकती, हां पत्थर जरूर खोदे जा सकते हैं, पर क्या पत्थरों से जीवन चल सकता है? बाकी की सुविधाएं जैसे सिंचाई, स्वास्थ्य एवं आवागमन के संसाधन भी शायद जंगल विभाग के कागजों में ही बन कर रह गए जो अस्तित्व में आज तक नहीं आए। पेयजल सुविधा के नाम पर 4 हैंडपम्प लगाए गए थे, वो पानी की जगह हवा ही उगलते हैं। विस्थापित गांव में स्कूल भी है परन्तु बदकिस्मती से सिर्फ स्कूल का ढांचा ही है, वहां पढ़ाने के लिए शिक्षक की नियुक्ति आज तक नहीं की गई, लेकिन गांववालों के अनुसार गुलाब सिंह (स्थानीय शिक्षित नवयुवक) ही यहां के शिक्षक हैं। लेकिन गुलाबसिंह का कहना है कि उन्हें किसी भी तरह का कोई भी लिखित आदेश नहीं मिला है, उनसे कहा गया था कि पढ़ायें, उन्हें भी 1 वर्ष से पढ़ाने का पैसा भी नहीं मिला है।

सरकार के मुताबिक पन्ना टाईगर रिजर्व से विस्थापित प्रत्येक परिवार को 1 लाख मुआवजा राशि मिलनी थी, इसके अलावा रिजर्व के अंदर परिवार की सम्पत्ति–मकान, जमीन, पेड़–पौधों के एवज में भी मुआवजा राशि मिलनी थी परन्तु उन 43 परिवारों के हाथ में मात्र 36000 रुपये नकद तथा 2500 रुपये सामान ढुलाई भाड़ा के अलावा कुछ भी नहीं मिला।! जंगल विभाग का कहना है कि बाकी की राशि न्यू झालर के विकास में खर्च हो गई। यदि वन विभाग की सही मानें तो फिर विकसित की गई संरचनाएं कहां हैं ? जब झालर एवं खमरिया से 43 परिवारों को अपने भरे–पूरे घरों से न्यू–झालर में विस्थापित किया गया तब उनके पास रहने को पथरीली जमीन तथा सर छुपाने को खुले आकाश के सिवा कुछ भी न थ। जैसे–तैसे इन परिवारों ने अपने लिए तथा अपने पशुओं के रहने के लिए व्यवस्था बनाई। मकान बनाने के लिए जो 36000 रुपये की राशि मिली वो भी किश्तों में दी गई । न्यू झालर निवासी हीरा बाई का कहना है कि मकान बनाने का मुआवजा 36000 रुपये यदि एक बार में ही मिलता तो शायद मकान बन भी जाता किन्तु राशि किश्तों में दी गई कभी 5000 रुपये तो कभी रुपये और कभी 10,000 रुपये। इस राशि का अधिकतर हिस्सा तो कर्ज पटाने और घर गृहस्थी की जरूरतों में ही खर्च हो जाता है तो मकान कहां से बनाते?

इतना ही नहीं टाईगर प्रोजेक्ट के नवीन व संशोधित दिशा निर्देशों के अनुसार विस्थापित किए जाने वाले परिवारों में 18 वर्ष से ऊपर प्रत्येक व्यक्ति को पृथक परिवार का दर्जा दिया जाएगा और मुआवजा भी अलग से दिया जाएगा। किन्तु यहां भी जंगल विभाग ने कानून की अवहेलना करने में जरा भी कोताही नहीं बरती। रघ्घू गोंड के परिवार में रघ्घू के चार बेटे एवं उनके परिवार हैं किन्तु ये सभी मात्र 5 एकड़ की ज़मीन पर ही निस्तार कर रहे हैं क्योंकि रघ्घू के बेटों को न तो अलग से मुआवजा राशि दी गई और न ही ज़मीन। ऐसे ही कई परिवार हैं जो कि इस समस्या को झेल रहे हैं और आज भी मुआवजा सूची में अपना नाम दर्ज करवाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। मुआवजे के नाम पर आज तक मात्र 36,000 रुपये ही मिले और रिजर्व के अंदर की सम्पत्ति के बदले जो मुआवजा मिलना था, वो भी आज तक इन विस्थापित परिवारों को नहीं मिला। इसका कारण पूछने पर इन गांव वालों को बस एक ही जवाब मिलता है कि अभी नपती का काम चल रहा है। और जैसे ही यह काम पूरा हो जाएगा, मुआवजा दे दिया जाएगा। ज्ञात हो कि ये 43 परिवार तीन वर्ष पूर्व विस्थापित किये गए थे और जब तीन वर्षों में इन परिवारों की संपत्ति की नपती नहीं हो पाई है तो क्या भरोसा आगे और कितने साल लगेंगे?

पुट्टी गोंड, हल्का, छुट्टू, रोशन, भैयन यादव, गुलाब बाई, मंगलिया गोंड आदि ये सभी अपने पूरे परिवार के साथ झालर से न्यू–झालर में विस्थापित होकर आए हैं। इन सबका कहना है कि रिजर्व के अंदर हमारे पास एक सुव्यवस्थित मकान था, जमीन थी जिससे घर में खाद्यान्न की कमी नहीं होती थी। पशुधन था, जिससे घर में घी, दूध भी पर्याप्त था और जगल से जलाऊ लकड़ी तथा लघु वनोपज मिल जाते थे जो अतिरिक्त आय का साधन था। आज हम आदिवासियों के पास आजीविका के नाम पर मजदूरी के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं रह गया है। पर अफ़सोस कि देश के हर ग्रामीण को रोजगार देने का वादा करने वाला राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कानून भी न्यू–झालर के विस्थापित परिवारों को मजदूरी नहीं दे सका। इन ग्रामीणों के पास न तो रोजगार गारंटी का जॉब कार्ड ही है और जब कार्ड नहीं तो कैसा रोजगार ? कारण, ये लोग अब अस्तित्व का संकट झेल रहे हैं। आज तक न तो न्यू–झालर को राजस्व गाँव का दर्जा दिया गया और न ही किसी पंचायत में शामिल किया गया है। विस्थापन के समय जंगल विभाग द्वारा इन ग्रामीणों को कहा गया था कि न्यू–झालर गाँव को जनवार पंचायत में शामिल किया जायेगा किन्तु जनवार पंचायत की सरपंच उर्मिला सिंह का कहना है की उन्हें ऐसी कोई जानकारी

न्यू–झालर के बाशिंदों को पिछले तीन वर्षों में मात्र एक ही बार राशन मिला है और वह भी झालर पंचायत से ही सरपंच ने भिजाया था। अब चूंकि ये नई जनवार पंचायत में शामिल ही नहीं किये गये हैं तो फिर कैसे मिलेगा राशन ? पेंशन भी एक या दो बार ही मिली, अब पेंशन भी नहीं। आंगनवाड़ी है लेकिन नाम को ही चलती है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पन्ना (10 कि.मी.) में ही रहती हैं, और गांववालों के अनुसार वो प्रतिदिन वहां पर नहीं आती हैं। सहायिका ही कभी–कभी बच्चों को पोषणाहार का वितरण करती हैं। टीकाकरण कभी–कभार ही हो पाता है। आईसीडीएस के अन्य महत्वपूर्ण तत्व पूरी तरह से नजरअंदाज किये जा रहे हैं, जैसे कि स्कूल पूर्व अनौपचारिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, वजन प्रबोधन आदि।

सदियों से आदिवासी समुदायों को अपने अनोखे रीति–रिवाजों और जडी–बूटियों के अनूठे ज्ञान के लिए जाना जाता है। किंतु आज इन पारंपरिक वन–वासियों को उनकी पुश्तैनी जमीनों से उखाड़ कर एकदम नए माहौल में लाकर बसा दिया गया है। जहाँ ये आदिवासी जीवन और जीविकोपार्जन के नए तरीकों को अपनाने के लिए मजबूर हैं, जिनका न तो इन्हें ज्ञान है और न ही कुशलता। यहाँ तक कि इन आदिवासियों को मजदूरी का भी हुनर नहीं आता क्योकि जमीन, जानवर और जंगल ही इनके जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त थे। इन विस्थापित आदिवासियों की अगली पीढी की क्या पहचान होगी–– परंपरागत वनवासी/आदिवासी या विस्थापित? इन विस्थापित ग्रामीणों के सामने सबसे बड़ा संकट अपने अस्तित्व को बचाए रखने का और साथ ही अपनी परंपरा को सहेजने का। इनके पास न तो खेती ही है और न ही रोजगार के साधन । सरकार की योजनाओ जैसे रोजगार गारंटी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा पेंशन आदि का लाभ भी इन विस्थापितों को नहीं मिल पा रहा है। और तो और इन ग्रामीणों को इनकी पारंपरिक जीवनशैली से भी कोसों दूर कर दिया गया है।

विस्थापन की इस पूरी प्रक्रिया में सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं महिलायें और बच्चे। विस्थापन के दौरान बाकी सारे पहलुओं को ध्यान में रखा जाता है किन्तु बाल–अधिकारों को दर किनार कर दिया जाता है। बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण यहाँ तक कि पहचान तक का हक़ छीन लिया जाता है। न्यू–झालर में विस्थापित परिवारों के बच्चे भी अपने बाल–अधिकारों से कोसों दूर हैं। गाँव में प्राथमिक शाला तो है परन्तु शिक्षक की नियुक्ति नहीं की गई और न ही मध्यान्ह भोजन मिलता है। आंगनवाडी तो है पर आंगनवाडी कार्यकर्ता पन्ना में निवास करती हैं अतः रोज गाँव नहीं आती और न ही बच्चों को नियमित पोषण आहार मिलता है। गाँव में किसी भी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं है और न तो जंगल की जडी–बूटियाँ ही उपलब्ध हैं, अतः न्यू–झालर वासियों को हर छोटी–बड़ी बिमारी के लिए पन्ना (10 कि. मी.) तक जाना पड़ता है।

हालांकि 1 जनवरी 2008 से लागू किये गए अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों कि मान्यता) अधिनियम के मुताबिक विस्थापन से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों/ समुदायों के मानवीय अधिकार एवं जीवन–यापन की मूल–चूल आवश्यकताओं को आधार बनाकर ही विस्थापन की प्रक्रिया की जायेगी। किन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि क्या विस्थापित किये जा रहे आदिवासियों को वाकई में इस अधिनियम के प्रावधानों का लाभ मिल रहा है? पन्ना टाईगर रिज़र्व के झालर गाँव को ही देखें तो यहाँ के परिवारों को एक वन भूमि से उठा कर दूसरी वन भूमि (न्यू–झालर) में विस्थापित किया जा रहा है। अब इस बात की क्या गारंटी है कि इन परिवारों को आने वाले समय में फिर से विस्थापित नहीं किया जायेगा? पन्ना टाईगर रिज़र्व के कोर क्षेत्र से तीन वर्ष पूर्व विस्थापित किये गए आदिवासी आज भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं और जो परिवार अन्दर बच गए हैं वो आये दिन जंगल विभाग के कर्मचारियों की ज्यादतियाँ झेलते रहते हैं। क्या वनों और वन्य–प्राणियों को बचाने की कवायद में इंसानों को भुला दिया गया है? देखना यह भी होगा कि क्या सरकार की नज़र में इंसान के जीवन और उसके अधिकारों की कोई कीमत नहीं रह गई है? गांव वाले कहते हैं कि सरकार इस प्रक्रिया को व्यवस्थापन कहती है जबकि हम इसे विनाश समझते हैं।

✍ **स्मृति/युसुफ बेग**

विस्थापन और बच्चे

श्योपुर जिले के विजयपुर ब्लॉक में बसे 24 विस्थापित गाँवो की समस्याओं को लेकर स्वयंसेवी संस्था और समुदाय ने एक बैठक आयोजित की। ये गांव कूनो पालपुर राष्ट्रीय उद्यान बनने के बाद विस्थापित किये गये हैं। वर्षों पहले विस्थापित किये गये इन गांवों आज भी मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। जिन एशियाई सिंहों को बसाने के लिए इन गांवों को विस्थापित किया गया था, उन्हें गुजरात सरकार ने अभी तक देने का निर्णय नहीं लिया है। बैठक में विमर्श के बाद जो समस्या आई, उसी दस्तां इस प्रकार है –

कूनो नदी के आस–पास बसे उन 24 गाँवों के आदिवासी परिवारों को आज भी प्रशासन की लापरवाही से अभावों की मार झेलनी पड़ रही है।

1. जिस क्षेत्रों में उन्हें बसाया गया हैं वह क्षेत्र पथरीला है इसमें 15–18 प्रतिशत ही लोगों को ही मिट्टी वाली जमीन दी गई है। वह भी उन लोागों को मिली है जो गैर आदिवासी हैं या थोडे बहुत जानकारी रखते है।
2. दो हेक्टेयर जमीन में से पूरी जमीन किसी भी हितग्राही की नहीं है।
3. खेती के लिये दी गई जमीन पथरीली होकर उसमें मिट्टी नहीं है , उसके ऊपर पत्थर के पाऊडर है।
4. बरिश होने पर प्रति साल मिट्टी खेती में से बह जाती है।
5. गर्मियों में हवा द्वारा पत्थर पाउडर उडकर कम होता रहता है।
6. आज से कुछ सालों बाद मिट्टी बिल्कुल खत्म हो जायेगी।
7. प्रशासन द्वारा किसी भी परियोजना के माध्यम से खेती योग्य जमीन को बचाया नही जा सकता है क्योंकि लगातार मृदाक्षरण हो रहा है।
8. विस्थापन करते समय प्रत्येक परिवार को दो हेक्टेयर भूमि खेती योग्य बनाकर देनी थी जिसकी राशि 3600 रुपये प्रति परिवार के हिसाब से खर्च कर उसमें मेड बंधवाना, सिंचाई के लिये कुँआ आदि का निर्माण, खेती के लिये अन्य सामग्री देनी थी, जो अधिकारियों ने नही दिया।
9. प्रशासन द्वारा चलाई जा रही परियोजना इस प्रकार है –

. जिला पंचायत द्वारा मेड बंधवाने एवं कुंआ बनवाने का काम तकनीकी सलाहकार के रूप में संरक्षण को दिया गया है।

. मेड बंधवाने का काम संरक्षण द्वारा किया जा रहा है।

. कुंआ बनवाने का काम कपीलधारा योजना के अन्तर्गत विस्थापित परिवारों से करवाया जा रहा है।

10. **मुख्य मुद्धा विस्थापित गाँवों का –**

आगरा गाँव से आगे कोई प्रशासनिक अधिकारी या कर्मचारी नहीं जाता है। जैसे – पटवारी (RI), RAE, ADFO आदि आज तक वहाँ नही पहुँचें। इन कारणों से प्रशासन कि कोई भी योजना का लाभ हितग्राही को नही मिल पा रहा है जिससे उनकी आजीविका पर विपरित प्रभाव पड़ रहा उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

11. **विस्थापित परिवारों की वर्तमान विवादित समस्या –**

विस्थापित परिवारों पर कुछ लोगों के जमीन के पट्टे आज तक नहीं मिले हैं। जिससे उन्हें आजीविका की परियोजना का लाभ नहीं मिल पा रहा है। कुछ जमीन की किताबें अन्य नामों से बनी हैं। चेरी खेडा ग्राम पंचायत में 24 परिवारों की जमीन की किताबे पटवारी के पास सालों से पड़ी है। इसी गाँव में जॉब कार्ड अन्य लोगों के नाम से या गलत नामों से बनायें गये है इस कारण हितग्राही को रोजगार गारंटी का

काम नहीं मिल पा रहा है। सरपंच, सचिव ग्राम सभा नहीं करवाते है। जिससे पात्र हितग्राही का चयन मुश्किल हो जाता है। ग्रामीण लोगों में से कुछ लोग अपना जॉब कार्ड सचिव को दे देते हैं। जिससे बिना मजदूरी के 5–7 दिन की मजदूरी मिल जाये और वह पूरा 100 दिन का काम को उस कार्ड में चढ़ाया जाता है।

रिलोकेशन प्लान के अन्तर्गत अधिकारी एवं कर्मचारियों द्वारा की गई धांधली का विवरण –

बिल्डिग मेटेरियल के लिये विस्थापित परिवार की 36000 + 1000 + 1000 यानी कुल 38000 रुपये दिया गया था उसे हितग्राही के नाम से चंबल क्षेत्रीय बैंक विजयपुर शाखा में डाला गया था। किसी परिवार की पासबुक बनी है तो किसी परिवार की नही। हितग्राही को दो से तीन सालों में यह पैसा 4000 – 6000 रुपये की किस्तों में दिया गया। बैंक खातें की बुक में आवक–जावक की इन्ट्री नहीं हैं। इस 38000 रुपये पर किसी भी हितग्राही को व्याज नही मिला है। कुछ आदिवासी परिवारों का पूरा पैसा दिया ही नहीं गया है। जलाऊ लकड़ी के लिये जिला समिति द्वारा 8000 रुपये प्रत्येक परिवार के हिसाब से दी जानी थी पर जलाऊ लकड़ी की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। जानवरों को चराने के लिये 8000 रुपये प्रति परिवार के हिसाब से समिति को चारगाह की व्यवस्था करनी थी वह भी अभी तक नहीं की गई है। 9000 रुपये सामुदायिक विकास के लिये समिति द्वारा व्यवस्था करनी थी जिसमें बिजली, पानी, सड़क आदि शामिल थे, पर कुछ गांवों में आज तक लाईट नहीं पहुंची है। पानी की व्यवस्था सम्पूर्ण गांवों में समिति द्वारा नही करवाई गई, इसके लिये पंचायत ने व्यवस्था की हैं। खम्बे लगे हैं पर लाईट नहीं है। कुछ गांवों में तो खम्बे भी नहीं लगे है। सालों से डी.पी खराब है।

अभी तक हुआ विकास कार्य

श्योपुर जिले से ग्राम संसद बनाने के लिये खेड़ा गाँव को प्रस्तावित किया गया है। MPRLP द्वारा इन गाँवों में आजिविका की परियोजना चलाई जा रही है। जिसमें नन्दन फल उद्यान, एस एच जी बैल, बकरी , चक्की आदि का लाभा हितग्राही को दिया गया है। इस माह में विस्थापित परिवारों को टमाटर एवं मिर्च का बीज दिया गया है। सभी गांवों में पौधों का भी वितरण किया गया है। वर्धन नामक घास का बीज वितरण किया गया है। विस्थापित गांवों में सभी जानवरों का वैक्सीनेशन किया गया है।

बीमारियों का प्रकोप

वायरल फीवर, फल्सीफेरियम मलेरिया ने हर घर में पैर पसार रखे है। प्रत्येक घर में 2–3–4 लोग मलेरिया के शिकार है। कुछ बच्चों को आँखों की बीमारी फैल रही है। कुछ बच्चें इन्ही बिमारी के शिकार होकर अपने आँख खो चुके है। इनके इलाज के लिये हमे कैम्प आदि की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इन बीमारियों को लेकर जिला कलेक्टर से बात की, जिसमें वायरल फीवर और फल्सीफेरियम के लिये अतिरिक्त दवाओं की व्यवस्था के लिये बोला गया। 13.08.08 को लादर एवं धुरेर्डी गाँव में स्वास्थ्य कैम्प का आयोजन सभी के सहयोग से किया गया। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र आगरा द्वारा आज तक किसी भी बडी बीमारी के लिये रेफर नहीं किया।

आन्दोलन का कारण

अचल सम्पत्ति का मुआवजा अभी तक न देना। पट्टा होने के बावजूद, मुआवजे की राशि में आदिवासी का नाम नहीं होना। अचल सम्पत्ति की नाप–तौल में गड़बड़ी। कुछ विधवाओं का नाम नही जोड़ना। कुछ वयस्क के नाम नहीं जोड़ना। पथरीली जमीन को बदल कर खेती योग्य जमीन दी जाये।

विस्थापित परिवार की आज की विकराल समस्या

परिवार का विस्तार बड़ा है। उसके लिये न तो रहने को घर हैं और न ही खेती करने लिये जमीन। ऐसे में वो क्या करें। जिन लडकों के नाम हितग्राही में थे उन के पास तो कुछ हैं भी, जो नहीं जोड़े गये उनका भरण पोषण कैसे हो, जबकी ये लोग किसान थे पूर्ण रूप से खेती पर आश्रित थे। रोजगार का कोई साधन उनके पास नहीं है। इनकी जमीन उपजाऊ थी जो कि कूनो नदी के किनारे थी। सिंचित भूमि के अन्तर्गत आती थी। वर्तमान जमीन पथरीली है। जिस पर एक से ज्यादा फसल नहीं ली जा सकती है। बाजरा और तिल्ली जैसी ही फसल उग पाते हैं। हल चलाने पर जमीन में से हर साल पत्थर निकालता है। जिसे साफ करना मुश्किल हैं खेत की मेड़ भी इन्हीं के खेत में से निकले पत्थरों द्वारा की जाती है। आज की तारीख में सभी विस्थापित परिवारों की स्थिति वैसी है। उन्हें विस्थापित करने का रिलोकनेशन प्लान एक ही था फिर गरीब, अति गरीब, सामान्य का ग्रेड कैसे दी जा सकती है। प्रत्येक परिवार मे झगड़े होते हैं बच्चे, अपने माँ–बाप को कोसते है। जिससे परिवारों की शान्ति भंग हो चुकी है।

आन्दोलन की शुरुआत

29 जुलाई 08 को मुख्यमंत्री शिवराज सिंह को अपनी माँगो को लेकर एक विज्ञापन दिया गया। जिस पर कोई विचार नहीं हुआ। 14 अगस्त 08 को रात्रीकालीन में आदिवासियों ने बैठक की और यह तय किया की हम वापस अपनी भूमि में रहने लगेंगे। 20 अगस्त 08 को शाम 6 बजे पीपड़ वावड़ी गेट से उन्होंने नेशनल पार्क के अन्दर जाने की कोशिश भी की।

परिणाम

प्रशासन ने अश्रु गैस और हवाई फायरिंग लाठी चार्ज किया। आन्दोलनकारियों के ऊपर एफआईआर चार्ज की गई। जिससे आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया। बलवा एवं वन कानून संबंधी धारा लगा दी गई। जिससे आन्दोलनकारी को गोली लगी, लाठी चार्ज में कई घायल हुए, कुछ को गिरफ्तार किया गया।

एक्शन प्लान

बीमारी से जूझ रहे आदिवासी परिवारों को इलाज की सुविधा दिलवाना, जिसमें दवाओं की पर्याप्त व्यवस्था हो सकें। गाँवों में हेल्थ कैम्प का आयोजन करवाना है। विशेष रूप से बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हेल्थ कैम्प लगाना आवश्यक है। छूटे हुए आदिवासियों के राशन कार्ड बनवाना हैं। जॉब कार्ड धांधली को रोकना है। जिससे हितग्राहियों को पर्याप्त मजदूरी मिल सकें। अन्त्योदय उपचार कार्ड बनवाने हैं। 9 बीघा जमीन के पट्टे मिल सकें जिससे चल रही परियोजना से हितग्राहियों को लाभ मिल सकें।

पुनर्वास के अधिकारों के लिये तैयारी

विस्थापित परिवारों का सम्पूर्ण सर्वे जिससे सभी मुख्य बिन्दुओं का स्पष्टीकरण हो सके। वन विभाग से भू–अर्जन विभाग से दस्तावेज़ हासिल करना है। भूमि का परीक्षण करवाना होगा। पुनर्वास का कार्य पूरा न होने की वजह से 10 सालों में विस्थापित परिवार अपने मानव अधिकरों से वंचित रहे हैं। जिसमें उन्हें विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ा है, प्रशासनिक योजनाओं का लाभ नहीं मिला है समय पर इसलिए इसके कारणों का पता लगाने के लिए सर्वे करना और योजना बनाने का काम करना होगा।

अगले आन्दोलन के रूप में प्रभावित ग्रामीण मतदान का सामूहिक बहिष्कार करने का विचार कर रहे हैं, इसलिए उनकी समस्याओं का जल्द से जल्द निराकरण करवाने के लिए सरकार पर दबाव बनाने का काम करना होगा। विस्थापितों का कहना है कि जब तक उन्हें अपने अधिकार नहीं मिलेंगे, तब तक वे किसी भी चुनावी प्रक्रिया में शामिल नहीं होंगे।

✍ **नीलम शिवहरे**

3. भोजन एवं काम का अधिकार

उपेक्षित है हरदुआ

कुछ समय पूर्व मध्यप्रदेश के रीवा जिले का हरदुआ गांव सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ दलित–आदिवासी–मजदूरों के संघर्ष का प्रतीक के रूप में हमारे सामने आया था, पर दुःखद बात यह कि रोजगार गारंटी की अपनी लड़ाई के कारण राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा यह गांव पुनः उपेक्षित है।

उल्लेखनीय है कि पिछले साल सितम्बर में हरदुआ के 341 मजदूरों ने रोजगार गारंटी योजना के तहत आवेदन देकर काम की मांग की, और पंचायत स्तर पर काम नहीं मिलने से प्रशासनिक अधिकारियों को आवेदन दिया।अंततः पंचायत ने मजदूरों की मांग पर काम तो खोला, लेकिन फिर सात दिनों अंदर काम बंद कर दिया। आश्चर्य की बात यह है कि काम रोकने की सूचना पंचायत ने लिखित में मजदूरों को नहीं दी। लोगों ने तो गांव की दीवारों पर लिखा विज्ञापन देख रखा था कि 14 दिन तक लगातार काम दिया जायेगा, इसलिये मजदूरों ने काम बंद नहीं किया और काम जारी रहा। पर पंचायत ने उनके काम को स्वीकार नहीं किया और न ही मजदूरी का भुगतान किया। 31 दिनों तक एक भी धेला नहीं मिलने पर मजदूरों ने पंचायत से लेकर जनपद, जिला पंचायत व जिलाधीश से भी मजदूरी के भुगतान की अपील की, लेकिन मजदूरी नहीं मिली। फिर लोगो छेड़ दी अन्याय के विरूद्ध लड़ाई और उन्होंने 29 अक्टूबर 2007 से सिमरिया उप तहसील कार्यालय में क्रमिक भूख हडताल शुरू कर दी। लगातार 59 दिनों तक भूखे–प्यासे रहकर बिना मजदूरी के सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ अनशन किया। इस लडाई मे उनके दो साथी शिवमंगल साकेत और सुखवंती चर्मकार की भूख से मौत हो गयी। उन्हें तोड़ने में प्रशासन और सामंतों के गठजोड़ ने कोई कसर नहीं छोड़ा। पर अपने हक की मांग के लिए पहली बार लामबंद हुये मजदूरों ने हार नहीं माना।

गौर करने लायक बात तो यह है कि इस हड़ताल में कोई भी सरकारी अधिकारी न तो कार्यस्थल पर आया और न ही मजदूरों से मुलाकात की। 19 नवम्बर को तहसील कार्यालय में जनसभा का आयोजन किया गया। जिसमें करीब 1000 मजदूर उपस्थित हुए। इस प्रदर्शन में राज्य और राष्ट्रीय स्तर के कई संगठनों ने सहयोग किया। हरदुआ के मजदूरों को मीडिया, जनसंगठन और सर्वोच्च न्यायालय के आयुक्त के सलाहकार ने सहयोग किया। सर्वोच्च न्यायालय के आयुक्त के सलाहकार ने कलेक्टर को 30 नवम्बर तक मजदूरी के भुगतान के निर्देश दिए। इस दबाव के कारण अफरा–तफरी में प्रशासन हरदुआ पहुंचा। और उन्हें आश्वासन दिया कि जल्दी ही मूल्यांकन के बाद उन्हें उनकी मजदूरी का भुगतान कर दिया जायेगा। कलेक्टर ने यह भी यह आदेश दिया कि जिन परिवारों के नाम बीपीएल परिवारों की सूची में से छूट गये हैं, उनके नाम शिविर लगाकर जोड़ दिये जायेंगे। हर परिवार के पास राशन कार्ड होगा। कलेक्टर ने राहत राशि के नाम पर गांव में 10 क्विंटल आटा भी बंटवाया।

पर कलेक्टर के आदेश के बाद भी हरदुआ के मजदूरों को मूल्यांकन के जाल में फंसा दिया गया। उन मजदूरों को 10–10 रुपये रोज के हिसाब से मजदूरी दी गई। पर मजदूरों ने उम्मीद नहीं छोड़ी, वे लगातार काम करते रहे और मजदूरी की लड़ाई में जीत हासिल कर यह जतला दिया कि जनशक्ति के आगे प्रशासन को झुकना ही पड़ता है।

इस लड़ाई में जीत के बाद प्रशासन के आश्वासनों पर अभी तक पूरी तरह से अमल नहीं हुआ है। तो क्या फिर हरदुआ के मजदूर प्रशासन के खिलाफ अभियान चलाने की तैयारी में लग जाये। कलेक्टर के आदेश और आश्वासन के बाद भी 341 मजदूरों में से केवल 108 के नाम ही बीपीएल की सूची में जोड़े गये हैं। 55 मजदूरों के पास तो अभी भी राशन कार्ड नहीं है। आज भी मजदूर राशन वितरण प्रणाली का लाभ लेने से वंचित हैं।

मुख्यमंत्री द्वारा चलाई गयी मुख्यमंत्री अन्नपूर्णा योजना इन मजदूरों के लिए कोई मायने नहीं रखती। क्योंकि कई मजूदरों के पास राशन कार्ड ही नहीं है। जिन मजदूरों के पास राशन कार्ड हैं, उन्हें भी राशन के लिए परेशान होना पड़ता है। हरदुआ में कई–कई दिनों तक राशन की दुकान बंद रहती है। इन मजदूरों के लिए न ही कोई राजनीतिक पार्टी राशन की दुकान का ताला तोड़ती है और न ही इन्हें राशन दिलवाने का प्रयास करती है।

9000 की आबादी वाले इस गांव में आज भी केवल एक आंगनवाड़ी है, जबकि यहां कम से कम दो आंगनवाड़ी की जरूरत हैं। इस गांव के अधिकांश बच्चे कुपोषित हैं। वैसे भी इस इलाके में कुपोषण का दर बहुत ही ज्यादा है। आज भी गांव के दलित और आदिवासी समुदाय के अधिकांश बच्चे आंगनवाड़ी के लाभ से वंचित हैं। गांव के 40 से ज्यादा बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। शिवमंगल साकेत की मौत के बाद आज भी उसकी विधवा रामकली बाई को सरकार की ओर से कोई राहत नहीं मिल पाई है। रामकली बाई का नाम भी गरीबी रेखा में नहीं है, जिसकी वजह से उन्हें रियायती दरों पर खाद्यान्न मिलने की कोई व्यवस्था नहीं है। रामकली बाई और शिवमंगल साकेत ने तालाब में मजदूरी की थी, उन्हें भी 10 रुपये के हिसाब से मजदूरी मिली थी। रामकली बाई कहती हैं कि अब तो हमने रोजगार गारंटी से उम्मीद ही छोड़ दी है।

दलित और आदिवासियों के संघर्ष के बावजूद भी सरकारी योजनाओं का ठीक तरह से क्रियान्वयन नहीं होना इस बात का सबूत है कि प्रशासन वंचित समुदाय के प्रति गंभीर नहीं है। आश्वासनों और आदेशों का जमीन पर नहीं उतरते देख, गांव के वंचित समुदाय को इस बात का अहसास हो रहा है कि जिस तरह से उन्होंने मजदूरी के लिए लड़ाई लड़ी थी, उसी तरह से इन योजना का लाभ लेने के लिए भी उन्हें संघर्ष की तैयारी में जुट जाना होगा। उन्होंने इस बात को महसूस कर लिया है कि यदि प्रशासन गरीबों की आवाज को अनसुना करें, तो उन्हें आंदोलन से ही झकझोरा जा सकता है।

✍ **रोली शिवहरे**

भूख की राजनीति एवं जन वितरण प्रणाली

भूख को परिभाषित करने का प्रयास पानी पर आकृति बनाने के सामान ही होगा। अतः बेहतर यही है कि भूख को समझने का प्रयास किया जाये। भूख का सीधा सम्बन्ध भोजन से है, वह न जाति देखती है, न वर्ग, न ही राजनैतिक दल से सम्बन्ध, भूख के खिलाफ जंग में जनवितरण प्रणाली की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

टीकमगढ़ जिले के जतारा विकासखंड की बैरवार पंचायत का एक मजरा बैरबार जंगल है। इस मजरे में 60 सौर आदिवासी निवास करते हैं। मजरे के सभी लोग एक सुर में कहते हैं कि 'हम तो केवल जनवितरण प्रणाली के सहारे ही जीवित हैं। इनके कहने का तात्पर्य है कि 'जन वितरण प्रणाली' के माध्यम से कम दामों पर जो अनाज उपलब्ध होता है, वह उनकी भूख के खिलाफ लडाई लड़ने में सहयोगी है। अन्त्योदय अन्न योजना के अंतर्गत 2 रुपए प्रति किलो के मान से गेंहूँ तथा 3 रुपए प्रति किलो के मान से चावल कुल 35 किलो अनाज की मात्रा प्रति परिवार तथा बीपीएल हितग्राहियों के लिए 20 किलो अनाज की मात्रा प्रति परिवार इन्हें पूर्ण खाद्य सुरक्षा तो नहीं देती, किन्तु, संघर्षरत रहने में मदद जरूर करती है।

किन्तु क्या जन वितरण प्रणाली जो कि अब विवादित रूप ले चुकी है, इस मजरे के आदिवासियों की ही भांति या इनसे बदतर जीवन जीने के लिये मजबूर सभी गरीबों के लिए अनाज के द्वार खोलती है? ऐसा नहीं है क्योंकि मध्यप्रदेश राज्य सरकार 63 लाख 66 हजार 270 परिवारों को बीपीएल हितग्राही स्वीकारती है, जबकि केंद्र केवल 41.25 लाख परिवारों को ही गरीबी रेखा के नीचे स्वीकार रही है। केंद्र द्वारा 27.77 लाख टन अनाज का आवंटन होना चाहिए जबकि केवल 17.32 लाख टन का ही आबंटन हो रहा है। केंद्र व राज्य के बीच के ये मतभेद या यूँ

ये मजरे छोटी–छोटी पहाड़ियों एवं पेड़ों से घिरे गहराईं लिए लगभग समतल क्षेत्रों में बसे हैं। जतारा विकासखंड से लगभग 10 किलोमीटर दूर बैरवार पंचायत है। यहां के आदिवासी पूर्ण रूप से अपने आसपास के जंगल पर ही निर्भर थे, किन्तु जनसंख्या वृद्धि के साथ ही तथाकथित प्रभावशाली जातियों (यादव एवं प्रजापति) के विस्तार से अपने आपको शोषित महसूस करते हुए प्रकृति प्रेमी इस समुदाय के अधिकांश परिवारों ने गांव से लगभग 6 किलोमीटर दूर बसने का फैसला किया ।

लगभग इन सभी परिवारों के पास 3 से 4 एकड़ पट्टे की भूमि है, किन्तु पिछले 4 वर्षों से न केवल यह गांव बल्कि पूरा बुन्देलखंड क्षेत्र भीषण सूखा से प्रभावित रहा है, अतः इनकी एक फसली सिंचाई के साधन से रहित भूमि में कुछ भी नहीं उपजा। इस वर्ष बारिश हुई लेकिन मानसून के पहले तथा लगातार 3 दिन एक साथ बरस कर बंद हो गई, परिणाम यह हुआ की खेतों में पानी भर गया तथा उन्हें जोता न जा सका और न हीं बोया जा सका।

गांववालों के अनुसार कृषि के अलावा अन्य पारंपरिक काम भी पिछले कुछ वर्षों मैं प्रभावित हुए हैं, जैसे – तेंदू पत्ता पिछले दो–तीन वर्षों से न के बराबर मिल रहा है। सुहागल की लकड़ी भी अब जंगल में ढूंढ़े नहीं मिलती, जिसका उपयोग टोकरी, पाल (मजबूत एवं सख्त चटाई जिसका उपयोग दरवाजे के रूप में कच्चे घरों में तथा पान की खेती हेतु पौधे को सहारा व छांव देने हेतु किया जाता है।) आदि बनाकर बेचा करते थे, वह भी पिछले दो–तीन वर्षों से बन्द हो गया है। दो वर्षों से सभी के रोजगार कार्ड सरपंच/सचिव के पास जमा हैं अतः रोजगार गारंटी के अंतर्गत काम की मांग करना या काम मांगने का सवाल ही नहीं उठता। इन सभी विषम परिस्थितियों में अब न केवल रोजगार का संकट है बल्कि ये लोग बिजली–पानी के संकट से भी जूझ रहे हैं।

बच्चों के लिए खाद्य सुरक्षा एक बड़ा सवाल बना हुआ है क्योंकि आंगनवाड़ी मजरे में न होकर 4 या 5 किलोमीटर दूर गाँव में होने से बच्चों को कोई लाभ नहीं मिल पा रहा है। प्राथमिक शाला में भी मध्यान्ह भोजन का वितरण नियमित नहीं होता तथा पिछले 15 दिनों से बिलकुल बंद है। ये परिवार पूरी तरह से रोज कुंआ खोदना और रोज पानी पीने की स्थिति में हैं तथा आसपास के जंगल से लकड़ियाँ इकट्ठी करके 10 किलोमीटर दूर जतारा जाकर बेचते हैं, जिसके बदले में इन्हें लगभग 20 से 25 रुपए मिलते हैं।

इनमे से 50 परिवार अन्त्योदय अन्न योजना के हितग्राही हैं। 10 परिवार बीपीएल के हितग्राही हैं। अन्त्योदय अन्न योजना के अंतर्गत 2 रुपए प्रतिकिलो के मान से गेंहूँ तथा 3 रुपए प्रति किलो के मान से चावल कुल 35 किलो अनाज की मात्रा प्रति परिवार तथा बीपीएल हितग्राहियों के लिए 20 किलो अनाज की मात्रा प्रति परिवार इन्हें पूर्ण खाद्य सुरक्षा तो नहीं देती, किन्तु, संघर्षरत रहने में मदद जरूर करती है।

✍ **नीति पुरोहित**

नागरिक पत्रकारिता

🕊 www.mynews.in **एवं** www.merikhabar.com
हमारे समक्ष एक महत्वपूर्ण विकल्प 'मेरी खबर' नाम से वेबसाईट भी है। इस पर भी आप अपनी खबरों को पहुंचा सकते हैं। अपनी खबर को आप हिन्दी में **www.merikhabar.com** या अंग्रेजी में आप अपनी खबरों को **www.mynews.in** पर भेज सकते हैं। इनके संपादक श्री वेदव्रत गिरि से आप 09826169126 पर संपर्क कर विस्तृत जानकारी ले सकते हैं।

4. पंचायती राज और महिला

महिला पंच और सरपंच निकालेंगी अखबार

सतना में तीन दिवसीय मीडिया लेखन प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन अगस्त में किया गया। यह कार्यशाला किसी सामान्य समूह के लिए नहीं था बल्कि यह निर्वाचित महिला पंच एवं सरपंचों के लिए था। इस मायने में यह एक नवाचारी प्रयोग था। छह सरपंचों और एक पंच के साथ शुरू हुई इस कार्यशाला के समापन के साथ ही प्रतिभागियों में अपने क्षेत्र के अलावा एक ऐसा कौशल विकसित हो चुका था, जिसकी जरूरत उन्हें लम्बे समय से महसूस हो रही थी।

कार्यशाला का यह उद्देश्य था कि एक ऐसा अखबार हो, जिसमें ग्रामीण विकास की सारी बातें आ सके। ग्रामीण विकास की सारी बातों का प्रकाशन मुख्यधारा के अखबारों में संभव नहीं है। तो क्या हो? तो क्या यह संभव है कि कोई वैकल्पिक अखबार निकाला जाये, पर प्रयोग तो इसका भी हुआ है। आखिरकार एक नये विकल्प के रूप में यह विचार आया कि क्यों न ऐसा अखबार निकाला जाए, जो समाचारों से जुड़े हो, जिनके बारे में समाचार हो, जो खुद समाचार हो। इस विचार के साथ इस कार्यशाला का आयोजन किया गया और इसके केन्द्र में वे निर्वाचित पंच और सरपंच महिलाएं थी, जिन्हें व जिनके काम को खबर के रूप में नहीं देखा जाता।

इस मायने में यह एक नवाचारी प्रयोग था। छह सरपंचों और एक पंच के साथ शुरू हुई। कार्यशाला के शुरुआत में प्रतिभागियों से कहा गया कि आपने पंचायत या क्षेत्र में आपके बातों को देखा सुना, बाहरी लोग भी आपके पंचायत को देखा सुना। वो सब बातें विस्तार से अखबार में नहीं आता। बाहरी लोग यदि पंचायत की जानकारी चाहे तो उन्हें गांव आना पड़ता है या सरपंच को उनके पास जाना पड़ता है। इसमें समय पैसा दोनों खर्च होता है। इसलिये कोई ऐसा तरीका निकाला जाये जिससे सरपंचों की बातें जो जहां है वहीं से बैठे जान जा सके, यदि ज्यादा जानना हो तो गांव आये।

घर का काम, पंचायत का काम सभी के साथ अखबार में लिखने का काम भी आ जाये तो कैसे समय निकालेंगी वे। उन्होंने जवाब दिया – हम समय से सब काम करते हुये अखबार के लिये भी समय निकालेंगे। एक कोई समय निश्चित कर लेंगे और काम करेंगे। प्रतिनिधियों ने कहा – पंचायत की जो खबर है जिले स्तर पर ब्लॉक स्तर पर नहीं पहुंच पाती – हम काम तो करते है लेकिन हमारा काम दिखाई नहीं देता – यदि हमारी बाते अखबार के माध्यम से उन तक पहुंचाये – अखबार की खबर से शासन, प्रशासन पर दबाव बनता है – इसलिये खुद का अखबार निकालना होगा, उसमें सरपंच और पंच रिपोर्टिंग करेंगी – अपनी बात को स्पष्ट रूप से सबके सामने ला सकेंगी।

पंच–सरपंच को गांव के प्रतिनिधि के रूप में गांव का काम करने के लिये गांव वालों ने आगे किया। उन्हें बहुत सी आशा है, अपेक्षा है लेकिन उनके मन में क्या है और जन प्रतिनिधि के मन में क्या है, कैसे पता चलेगा। कुछ लोग पूरी बात बताते हैं पर पूरी बात नहीं बताते – अगर बात करते भी है तो अपने मतलब की बात करता है, सभी के मतलब की बात नहीं और जन प्रतिनिधि एक व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि पूरे गांव के लिये काम करता है। जन प्रतिनिधि कोई काम करना चाहती हैं वो एक के लिये नहीं सबके लिये करना चाहेंगी। सबके लिये काम करना है तो सबकी जरूरत जानना होगा। यदि एक–एक व्यक्ति के पास जाकर बात करना चाहेंगे तो ये सम्भव नहीं। कुछ बात सच है कुछ नहीं, क्या सच है क्या प्रक्रिया है (काम की) ये सभी बातों को लोगों के सामने लाने का एक सशक्त माध्यम अखबार है। अखबार की बात सभी जानना चाहते हैं, कोई पढ़ा लिखा नहीं है वो भी पढ़े लिखे व्यक्ति से पढ़ायेगा कि क्या लिखा है। पढ़कर बोली जाने वाली बात धीरे–धीरे सभी लोगों के बीच फैल जाती है। जब लोग अखबार की बात पढ़ेगे, उनको पसंद आये ना पसंद आये पर उनकी प्रतिक्रिया आने लगेंगी

तो जन प्रतिनिधि अपनी कमी को सुधार भी सकती है और लोगों के बीच में उनके काम की चर्चा होने लगेगी। यदि जनप्रतिनिधि गांव के लोगों की बात जानना चाहते हैं या गरीबों को चिन्हित करना चाहते हैं तो अखबार के माध्यम से अगर लिखित रूप में ये बात कहा जाये कि पंचायत के सभी गरीबों को सहायता दी जायेगी या सुविधा उपलब्ध की जायेगी तो गरीब आदमी खुलकर सामने आने लगेंगे और अमीर छुपकर आयेगा। लोगों की पहचान करने में अखबार मदद करेगा। अपनी बात एक साथ खुले तौर पर लोगों तक पहुंचाने में भी अखबार मदद करेगा।

सरपंच बनाने में सारे लोग आपके पक्ष में हो, ऐसा नहीं है और वे ल्रोग पूरे समय आपका विरोध हमेशा करेंगे, बात को घुमा–फिरा करेंगे। यदि बात लिखित हो, अखबार के माध्यम से तो फिर विरोध मुश्किल होगा। छपी बात सबूत बनकर लिखित रूप से रहेगी। यदि सड़क बनने को लेकर भ्रष्टाचार की बात हो रही हो तो उसकी सच्चाई पूरे ब्यौरे के साथ अखबार में लिखित रूप से प्रस्तुत करने पर अफवाह से बचा जा सकता है। हर बड़ा नेता हर बड़ा खिलाड़ी अपनी बातों का खुलासा करने, सफाई पेश करने के लिये अखबार और टीवी का सहारा लेते हैं। जन प्रतिनिधि अपने काम और पैसा की सफाई अखबार के माध्यम से सार्वजनिक कर सकते हैं। लोग उनके बारे में गलत धारणा बना रखे हैं तो उनकी सोच लिखी गयी बातों से बदल सकती है।

अखबार तीन तरह से मदद कर सकता है –

– लोगों तक अपनी बात पहुंचाने में (सुचना देने की)।
– लोगों की जरूरते जानने और प्रतिक्रिया पहुंचाने में।
– गलत व्याख्या को रोकने या सच्चाई को सामने लाने में मदद करने में।

हर काम गांव के हर आदमी की नजर में नहीं होता है। वह कुछ लोगों की नजर में होता है और उस वजह से 40 प्रतिशत सरपंच के पक्ष में, 40 प्रतिशत कोई मतलब नहीं रखते और 20 प्रतिशत लोग है वो कभी यहां कभी वहां बात करते हैं। अभी तक मीडिया का उपयोग गांव स्तर तक नहीं किया गया, जिस दिन मीडिया के माध्यम से गांव की बात स्पष्ट होगी तब सरपंच और पंच विरोधी भी उनके पक्ष में होंगे, उनकी बात सुनेंगे। अपनी बात पहुंचाने – लोगों की प्रतिक्रिया सुनने और गलत बात फैलाने से रोकने का सशक्त माध्यम अखबार है। गांव का जो अखबार निकलेगा तो उसमें देश के किसी कोने की खबर छप या न छपे इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन गांव की बात छपेगी, गांव वालों के मतलब की बात छपेगी तो उसका फायदा होगा। अखबार गांव के लोगों के लिये आपसी संवाद का जरिया हो सकता है। जन प्रतिनिधि अपनी बात लोगों तक पहुंचा सकते हैं। गलतफहमी को दूर कर सकते हैं। लोगों को योजना की जानकारी दे सकते हैं।

इस चर्चा के बाद कार्यशाला में समूह बनाकर इस बात पर विचार किया गया कि यदि हम अखबार निकालेंगे, तो उसमें कौन–कौन सी समस्याओं को सामने लायेंगे।
चर्चा के बाद जो समस्यायें एवं मुद्दे सामने आये, वे निम्न हैं –

- पानी की समस्या का निदान हेतु टैंकर लगाया गया। टैंकर का पैसा नहीं मिला।
- मध्यान्ह भोजन योजना में नहीं हो रहा सुधार।
- मध्यान्ह भोजन के संचालन हेतु दूसरे समूहों को मौका दे।
- सरपंच द्वारा कराया गया पशु चिकित्सालय का निर्माण।
- महिला सरपंचों की बातों को अनसुनी कर रहा प्रशासन।
- महिला सरपंचों पर जबरदस्ती लगाया जा रहा धारा–40।
- झूठी शिकायतों से सरपंच परेशान।
- तिघरा पंचायत के पात्र हितग्राही शासन की योजना से लाभान्वित।
- सभी ग्राम पंचायतों में कराया जाये शौचालय का निर्माण।

- महिला सरपंचों ने छेड़ा नशा मुक्ति का अभियान।
- अस्पताल का कराया जाये निर्माण – गांव के लोगों का मत।
- जनपद सदस्य एवं सीईओ द्वारा किया गया सरपंच का फर्जी हस्ताक्षर।
- महिला सरपंच ने किया आंगनवाड़ी, स्कूल, राशन की दुकान का अवलोकन।
- ग्रामसभा में हुआ हंगामा।
- महिला सरपंच कठिन संघर्ष से चला रही अपना पंचायत।
- कुछ महिला का सालों तक नहीं हुआ खाता संचालन।
- ग्राम पंचायत विहरा में आंगनबाड़ी में भ्रष्टाचार।
- स्वसहायता समूह द्वारा मध्यान्ह भोजन योजना में धांधली।
- सरपंचों को कूप निर्माण में भारी तबाही (लागत से खर्च अधिक, पैसा नहीं मिल रहा)।
- आशा कार्यकर्ता की व्यवस्था न होने से परेशान।

इसके बाद इस बात पर चर्चा की गई कि अखबार सबूत के साथ सच को लोगों तक पहुंचाता है। अखबार एक व्यक्ति के भलाई के लिये नहीं अधिकतम लोगों के हित की बात करता है।

इसके अगले दिन क्षेत्र भ्रमण किया गया और उन गांवों में रिपोर्टिंग की गई। वहां पर लोगों से बात करने, साक्ष्य इकट्ठा करने, समाचार को समझने का प्रयास किया गया। वापस लौटकर सभी प्रतिभागियों ने अपने अनुभवों को बताया। शाम को प्रतिभागियों को नवभारत प्रेस का भ्रमण कराकर वहां अखबार की कार्यशैली से उन्हें अवगत कराया गया। वहां उन्होंने नवभारत संपादक संजय पयासी से बातचीत भी की।

संजय पयासी ने उन्हें बताया कि अखबार में जो कुछ भी छपता है उसकी जिम्मेदारी संपादक की होती है। उन्होंने अपने को भी अखबार का सरपंच बताया और कहा कि सभी साथी पंचों के सहयोग से वे अखबार देखते हैं। गांव स्तर पर भी साथी होते है वो हमें सूचना देते है उसी सूचना को अखबार के माध्यम से हम तथ्य के आधार पर प्रकाशन करते हैं। सरकारी स्तर पर जनसम्पर्क विभाग होता है जिनसे प्रशासन की सूचना हम तक पहुंचती है। अखबार में काम करने के लिये पत्रकारिता की पढ़ाई करनी पड़ती है सीखना पड़ता है और योग्यता और अनुभव के आधार पर उन्हें जिम्मेदारिया दिया या बांटी जाती है। मीडिया की पहुंच अभी भी ग्रामीण इलाके में ज्यादा नहीं है। या मीडिया नहीं पहुंच पाया, ये हमारा दुर्भाग्य है।

कार्यशाला के अंतिम दिन प्रतिभागियों ने अपने अनुभवों और रिपोर्टों के आधार पर अखबार निकाला। उन्हें अखबार देकर उसका अध्ययन भी कराया गया। बाद में उसकी समीक्षा की गई। हेडिंग, फॉण्ट, कॉलम, डेट लाइन, साईज, फस्ट लीड आदि के बारे में भी उन्हें बताया गया।

इस तरह से प्रशिक्षण कार्यशाला का समापन हुआ और प्रतिभागियों ने यह निर्णय लिया कि वे यह कोशिश करेंगी कि नियमित अंतराल पर अखबार निकाल सकें।

(प्रशिक्षण में सतना जिले से बांधा पंचायत की सरपंच विमला सिंह, विहरा–2 की सरपंच गीता वर्मा, महिदल की सरपंच पुष्पा सिंह और कोनिया की सरपंच मीरा मिश्रा, जमुना पटरहाई की पंच प्रेमवती, रीवा जिले से मौहारा की सरपंच आशा कुशवाहा एवं तिघरा की सरपंच सुनीता आदिवासी ने भाग लिया। कार्यशाला में स्रोत व्यक्ति के रूप में प्रोफेसर कमल दीक्षित थे। द हंगर प्रोजेक्ट से नीरज सक्सेना, विकास संवाद से स्मृति शुक्ला एवं राजु कुमार, ग्राम सुधार समिति से मंजू चटर्जी, अनुपमा एजुकेशन सोसायटी से प्रियंका इस कार्यशाला में उपस्थित थे।)

✍ विकास संवाद समूह

5. कानूनी प्रक्रिया

उचित पुर्नवास के पूर्व नहीं हटाये जायेंगे वनवासी

11 जनवरी 2008 को बुरहानपुर जिले के ग्राम पंचायत गढ़ताल के जूनीबादी एवं पीपलखोरा गाँव के 116 आदिवासी परिवारों के साथ वन विभाग के कर्मचारियों द्वारा जबरदस्ती और लूट–पाट की गईए उनके घर और फसलें जला दी गई और उन्हें जबरदस्ती उनकी काश्तकारी भमि से बेदखल किया गया। उक्त घटना के संदर्भ में बुरहानपुर के रविन्द्र मसाने एवं भीम सिंह द्वारा उच्च न्यायालय जबलपुर में एक जनहित याचिका दायर की। 2 जुलाई 2008 को इस याचिका की सुनवाई के दौरान जस्टिस श्री ए. के. पटनायक एवं जस्टिस श्री संजय यादव की डिविजनल बेंच ने मध्य प्रदेश के आदिम जाति कल्याण विभाग एवं केंद्र के आदिम जाति कल्याण मंत्रालय को कारण बताओ नोटिस जारी किया। इस नोटिस में उक्त घटना के विरुद्ध विभाग द्वारा कोई भी कदम न उठाये जाने के विषय में पूछा गया। साथ ही बुरहानपुर के जिला वन अधिकारी एवं उक्त घटना में शामिल पाए गए 9 अन्य वन अधिकारियो को भी नोटिस जारी किया गया।

एडवोकेट राघवेन्द्र कुमार ने याचिकाकर्ताओं का पक्ष रखते हुए कहा कि जिला अधिकारियो ने न सिर्फ गाँव वालों के साथ लूट–पाट और जोर–जबरदस्ती की, बल्कि जूनीबाड़ी एवं पीपलखोरा गाँव के 202 आदिवासी परिवारों को उनकी ही भूमि में खेती करने से रोकते रहे और लगातार उन्हें डराते धमकाते रहे। वन अधिकार कानून, 2006 में यह स्पष्ट तौर पर उल्लेख है कि वन भूमियों में रहने वाले आदिवासियों एवं अन्य परम्परागत निवासियों को उनकी भूमि से तब तक बेदखल नहीं किया जायेगा जब तक कि विस्थापन एवं पुनर्वास पैकेज सुनिश्चित न हो जायें। राघवेन्द्र जी ने उक्त नियम का उल्लेख करते हुए कहा कि जहाँ एक ओर प्रदेश एवं केंद्र शासन द्वारा आदिवासियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों को वन अधिकार अधिनियमए 2007 कानून के तहत वन भूमि पर अधिकार देने की प्रक्रिया चला रही है, वहीं दूसरी ओर बुरहानपुर जिला के वन अधिकारियो द्वारा किये गए ये कृत्य बहुत ही शर्मनाक हैं और कानून की अवहेलना भी करते है। श्री कुमार ने जिला एवं प्रदेश शासन पर आरोप लगाते हुए कहा कि याचिका कर्ताओं ने उक्त घटना क्रम की शिकायत पुलिस महानिदेशक एवं आदिम जाति कल्याण विभाग के प्रमुख सचिव सहित प्रदेश के उच्चत्तम पदाधिकारियों के समक्ष दर्ज कराते हुये अन्याय में शामिल वन विभाग के अधिकारीयों के खिलाफ सख्त कार्यवाही की मांग की थी, किन्तु प्रशासन ने बुरहानपुर के जिला अधिकारियों के खिलाफ कोई भी कदम नहीं उठाया।

याचिका में जिला अधिकारीयों के इस गैर–जिम्मेदाराना व्यवहार के खिलाफ भी कार्यवाही की मांग की गई। उक्त घटना में जूनीबादी एवं पीपलखोरा के ग्रामीणों को हुए नुकसान की भरपाई और उनकी काश्त भूमि में बिना किसी रोक–टोक के खेती करने की इजाजत देने की मांग की। 16 जुलाई 2008 को इस मामले की सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ताओं के हित में फैसला देते हुए माननीय उच्च न्यायालय ने गढ़ताल ग्राम पंचायत से ग्रामीणों के विस्थापन की प्रक्रिया पर रोक लगाने के आदेश दिए। माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार ग्राम पंचायत गढ़ताल के जूनीबादी एवं पीपलखोरा गाँव के निवासियों को उनकी काश्त भूमि से जंगल विभाग तब तक विस्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि इन ग्रामीणों को 2007 के वन अधिकार अधिनियम के अनुसार भूमि आवंटन एवं पुनर्वास की अन्य सुविधाएँ सुनिश्चित न हो जाये। माननीय न्यायालय ने यह भी निर्देश दिये हैं कि अगले निर्णय तक इन ग्रामीणों को इनकी काश्त भूमि पर खेती करने का हक़ होगा और इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा।

✍ **विकास संवाद समूह**

आदेशों का क्रियान्वयन नहीं हो रहा है जमीनी स्तर पर

वन अधिकार कानून को लागू होने के बाद एक आस बंधी है कि वनवासियों को उनके वाजिब अधिकार मिल पाएंगे, जिसमें आदिवासी प्रमुख होंगे पर जमीनी स्तर पर यह कोशिश चल रही है कि लोगों को जंगल पर कम से कम अधिकार मिले। इसके लिए अलग–अलग तरीके से लोगों को प्रताड़ित किया जा रहा है। इसकी सूचना मिलने पर राज्य स्तर नीति निर्माताओं को अवगत कराया जाता है, जिसकी वजह से कुछ सकारात्मक आदेश पारित होते हैं। पर अफसोस की बात है कि इसका क्रियान्वयन जमीनी स्तर पर नहीं होता। अतः हम आप तक वन विभाग की उस प्रति को दे रहे हैं, जिसमें लिखा है कि कानून के तहत जबतक दावों का परीक्षण न हो जाये तब तक राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों में किसी को प्रवेश से न रोका जाये। इसे स्थानीय स्तर पर सुनिश्चित कराने के लिए स्थानीय वन अधिकारियों पर दबाव बनाना होगा। और आदेश न मानने पर उनकी शिकायत उच्च अधिकारियों से किये जाने की जरूरत है।

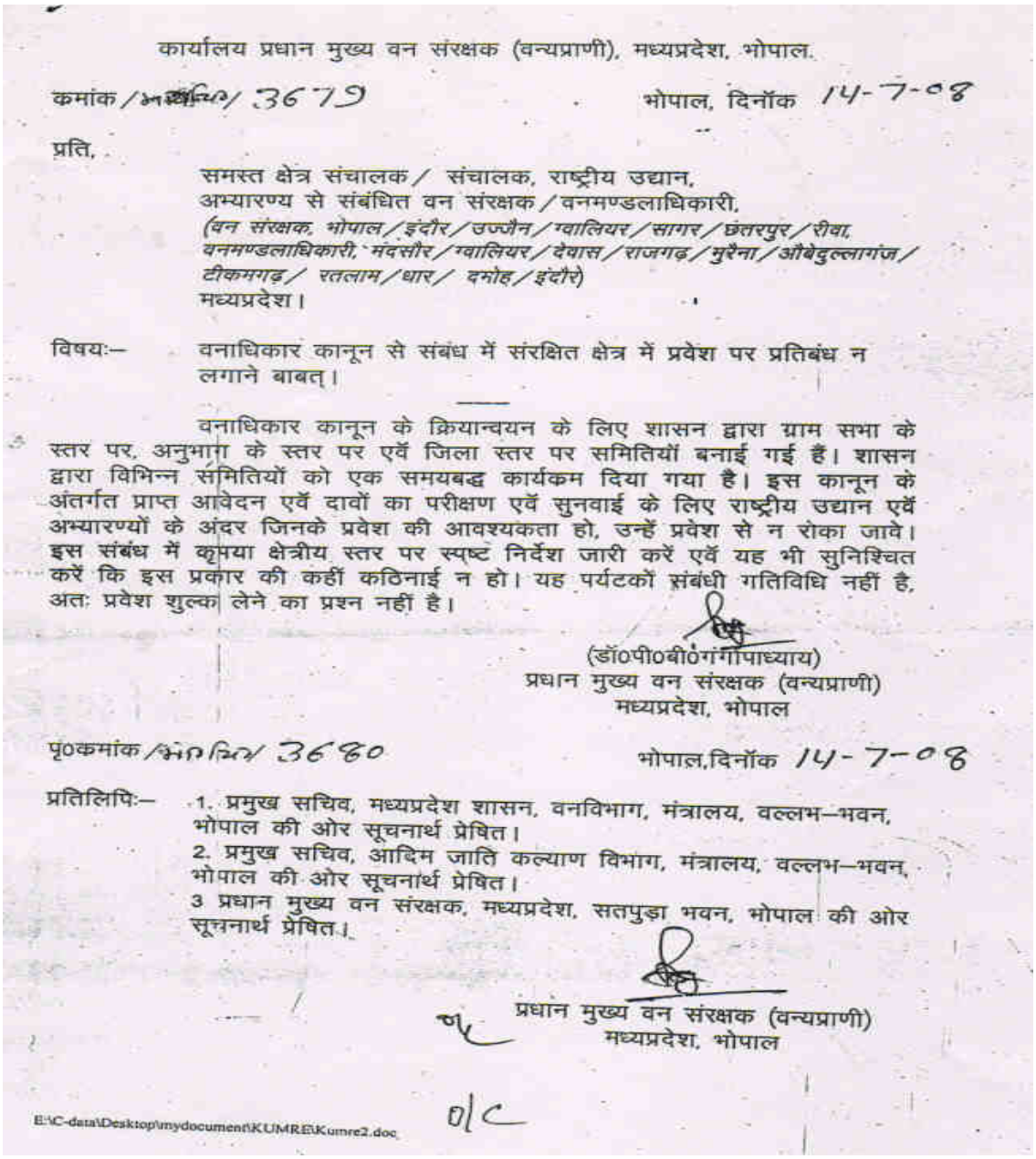

कार्यालय प्रधान मुख्य वन संरक्षक (वन्यप्राणी), मध्यप्रदेश, भोपाल.

कमांक/मा०वि०/ 3679 भोपाल, दिनॉक 14-7-08

प्रति,

समस्त क्षेत्र संचालक/ संचालक, राष्ट्रीय उद्यान,
अभ्यारण्य से संबंधित वन संरक्षक/वनमण्डलाधिकारी,
(वन संरक्षक, भोपाल/इंदौर/उज्जैन/ग्वालियर/सागर/छतरपुर/रीवा,
वनमण्डलाधिकारी, मंदसौर/ग्वालियर/देवास/राजगढ़/मुरैना/औबेदुल्लागंज/
टीकमगढ़/ रतलाम/धार/ दमोह/इंदौर)
मध्यप्रदेश।

विषयः– वनाधिकार कानून से संबंध में संरक्षित क्षेत्र में प्रवेश पर प्रतिबंध न लगाने बाबत्।

वनाधिकार कानून के क्रियान्वयन के लिए शासन द्वारा ग्राम सभा के स्तर पर, अनुभाग के स्तर पर एवं जिला स्तर पर समितियाँ बनाई गई हैं। शासन द्वारा विभिन्न समितियों को एक समयबद्ध कार्यकम दिया गया है। इस कानून के अंतर्गत प्राप्त आवेदन एवं दावों का परीक्षण एवं सुनवाई के लिए राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्यों के अंदर जिनके प्रवेश की आवश्यकता हो, उन्हें प्रवेश से न रोका जावे। इस संबंध में कृपया क्षेत्रीय स्तर पर स्पष्ट निर्देश जारी करें एवं यह भी सुनिश्चित करें कि इस प्रकार की कहीं कठिनाई न हो। यह पर्यटकों संबंधी गतिविधि नहीं है, अतः प्रवेश शुल्क लेने का प्रश्न नहीं है।

(डॉ०पी०बी०गंगोपाध्याय)
प्रधान मुख्य वन संरक्षक (वन्यप्राणी)
मध्यप्रदेश, भोपाल

पृ०कमांक/मा०वि०/ 3680 भोपाल,दिनॉक 14-7-08

प्रतिलिपिः–
1. प्रमुख सचिव, मध्यप्रदेश शासन, वनविभाग, मंत्रालय, वल्लभ–भवन, भोपाल की ओर सूचनार्थ प्रेषित।
2. प्रमुख सचिव, आदिम जाति कल्याण विभाग, मंत्रालय, वल्लभ–भवन, भोपाल की ओर सूचनार्थ प्रेषित।
3 प्रधान मुख्य वन संरक्षक, मध्यप्रदेश, सतपुड़ा भवन, भोपाल की ओर सूचनार्थ प्रेषित।

प्रधान मुख्य वन संरक्षक (वन्यप्राणी)
मध्यप्रदेश, भोपाल

O/C

E:\C-data\Desktop\mydocument\KUMRE\Kumre2.doc

6. महिला अधिकार

बिकती लाडलियां और आंख मूंदी सरकार !

हां हम बात कर रहे है! अपने मध्यप्रदेश की, जहां से आए दिन एक बड़ी खबर अखबारो मे पढने को मिलती है कि लडकियां गुम होती जा रही हैं और ऐसी घटनाओं के लिए मंडला, सीधी, डिंडोरी प्रमुख जिलों में शुमार हैं। ये लडकियां 12–18 वर्ष की उम्र की हैं, जो आदिवासी व पिछडे क्षेत्रो से हैं। इन्हें रोजगार का लालच देकर कुछ गिरोहों के माध्यम से गुमराह कर बडी तादाद् में दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में भेजा जा रहा है। सवाल आजीविका से जुड़ा हो तो बात समझ में भी आती है, लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि बालिकाओं को आजीविका कमाने के नाम पर बेचा जा रहा है। ज्ञात हो कि प्रदेश सरकार एक ओर लाडलियों की बचाने के जतन कर रही है, वहीं दूसरी ओर लाडलियों की नीलामी हो रही है। इस गम्भीर मुद्दे को लेकर प्रशासन और समाज को गंभीर होना होगा, नहीं तो आये दिन लाडलियां बिकती रहेंगी और यह प्रशासन आंख मूंदें न्याय का पाठ पढ़ाता रहेगा।

सीधी जिले के कुसमी जनपद पंचायत के अंतर्गत ग्रामीण इलाके से तीन वर्षों के दौरान एक दर्जन आदिवासी किशोरियां व युवतियां गायब हो चुकी हैं जिसमे ग्राम पंचायत दुआरी में चगोहर की चार युवती, ग्राम ठाड़ीपथ से दो, ग्राम हर्रई से दो युवती, ग्राम कुसमी से एक, चमारी टोल से दो और ग्राम जुरी से एक किशोरी गायब हुई (देखें तालिका क्र. 1)। इन किशोरियों की आज तक कोई खोज खबर नहीं हो पायी है। कुछ लड़कियों की गुमशुदगी की रिपोर्ट कुसमी थाने में दर्ज हुई तो कुछ की नहीं। गांव वालों के अनुसार इन युवतियों के गायब होने के पीछे किसी बड़े गिरोह का हाथ है।

गांव	लापता किशोरियां
चगोहर	4
ठाड़ीपथ	2
हर्रई	2
कुसमी	1
चमारी टोल	2
जुरी	1
संदर्भ : गांव के लोगों से प्राप्त जानकारी	

यह अकेले सीधी जिले का मामला नहीं है, बल्कि मण्डला, डिण्डोरी व बालाघाट जैसे आदिवासी बाहुल्य जिले मे भी खासकर आदिवासियों की किशोरीयों को दिल्ली ले जाकर उनका आर्थिक, मानसिक और दैहिक शोषण करने वाला गिरोह पिछले कुछ सालों से इन जिलों में सक्रिय है और अभी तक लगभग पचासों आदिवासी लड़कियों को इस गिरोह द्वारा दिल्ली एवं अन्य शहरों मे भेजा जा चुका है।

ज्ञात हो कि इन क्षेत्रों में निवासरत आदिवासियों की आर्थिक स्थिति भी काफी कमजोर है। गांवों में रोजगार के घटते विकल्पों से लोगों का शहरों की ओर पलायन तेजी से हो रहा है। इसी कड़ी में वैश्वीकरण भी अपना प्रभाव छोड़ता है जिससे बाजार का असर ग्रामीण जनता को शहरी चकाचौंध की ओर खींच रहा है। इसका परिणाम यह है कि महिलायें इस प्रतिस्पर्धा में एक वस्तु की तरह समझी जाने लगी है और गिरोहों द्वारा उनकी खरीद फरोख़्त की जा रही है।

मंडला के मैनपुर विकासखण्ड के ग्राम सकवाह की एक आदिवासी किशोरी अनीता पुसाम (परिवर्तित नाम), उम्र 14 वर्ष, को 3 वर्ष पूर्व 2004 गांव के ही कमलवती व नवल द्वारा रोजगार का हवाला देकर दिल्ली ले जाया गया। आज उसके परिवार से बातचीत करने पर यह सामने आया कि आज उसका कोई अता–पता नहीं है। यहां तक कि जिन लोगों के माध्यम से अनीता दिल्ली गई वो लोग भी उसके बारे मे बताने को राजी नहीं है क्योंकि शायद उन्हें भी यह पता नहीं होता कि वो कहां हैं?

यह परिवार आदिवासी होने के साथ–साथ शहरो की चकाचौंध से परे है। परिवारजनों की विवशता यह है कि वह चाह कर भी वे कुछ नहीं कर सकते हैं। परिवारवालों ने अपनी तरफ से इस घटना की एफ.आई.आर थाने में लिखवाई, लेकिन इस पर आज तक कोई कार्यवाही नहीं हुई। इस तरह के प्रकरणों में प्रशासन भी उदासीन रवैया अख्तियार करता रहा है। प्रशासन की इस निष्क्रियता से न जाने कितनी अनीता अब तक इन गिरोहों के जाल में फंस चुकी हैं ?

अनीता का तो कोई अता–पता नहीं है, लेकिन गिरोह के चंगुल से जान बचा कर आई युवतियां कहती हैं कि दिल्ली में उन्हें परेशान किया जाता था और उनका यौनिक शोषण भी किया जाता था। युवतियां यह भी कहती हैं कि हमें यहां से तो नौकरी का कहा गया था, लेकिन वहां पर तो घरों में 16–17 घंटें काम करना पड़ता था, और सुरक्षा का तो कोई सवाल पैदा ही नहीं होता? युवतियां कहती हैं कि कोई बड़ा गिरोह है, हम तो सभी को जानते भी नहीं हैं ।

सरकार की नाक तले लडकियों को बेचा जा रहा है पर सरकार आंख मूंदे यह देख रही हैं। ये घटनायें महिलाओं की उन्नति में बाधक हैं। जिसका साफ असर हम इन क्षेत्रों में देख सकते हैं। इन घटनाओं से महिलाओं में असुरक्षा और ज्यादा बढ गई है। यही नहीं, सीधी में तो इस तरह की घटनाओं के उजागर होने के बाद ग्रामीण इलाकों में महिलाओं को घर से निकलने पर ही पाबंदी लगा दी है।

परिवार और ग्राम स्तरीय सभी लोगों को इसकी जानकारी है और वह यह भी बताते हैं कि उनके पास गिरोह को लेकर पुख्ता सबूत भी हैं, लेकिन प्रशासन कोई भी एक्शन नहीं लेता है। गौरतलब है कि राज्य महिला आयोग एवं मानवाधिकार आयोग ने भी इतने ठोस सबूतों के बावजूद आज तक किसी भी कार्यवाही की अनुशंसा नहीं की। ज्ञात हो कि प्रदेश सरकार एक ओर लाडलियों की बचाने के जतन कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर लाडलियों की नीलामी हो रही है। इस गभ्भीर मुद्दे को लेकर प्रशासन और समाज को गंभीर होना होगा, नहीं तो आये दिन लाडलियां बिकती रहेंगी और यह प्रशासन आंख मूंदें न्याय का पाठ पढ़ाता रहेगा।

✍ **अरघा**

महिला एवं बाल व्यापार - एक चुनौती

यह एक चौंकाने वाली स्थिति है कि महिला एवं बाल व्यापार एक ऐसा उद्योग बन गया है जो कि विश्व में तीसरे स्थान पर आमदनी कर रहा है। हथियार एवं नशीली दवाओं के व्यापार के बाद आज मानव व्यापार सबसे ज्यादा आर्थिक लाभ का व्यवसाय बन चुका है। बच्चों एवं महिलाओं की तस्करी से न केवल हमारा देश बल्कि हमारा प्रदेश भी अछूता नहीं रहा है। महिला एवं बाल व्यापार के लिये आदिवासियों की बहुलता वाले जिले मंडला, डिंडोरी और बालाघाट ज्यादा संवदनशील समझे जा रहे हैं। यहाँ के बच्चों विशेषतः लड़कियों को काम के नाम पर बाहर ले जाया जा रहा है। मानव तस्करी के दलालों के लिए ये क्षेत्र विशेष रूप से आकर्षित करते हैं, जहां के लोग आर्थिक, सामाजिक या शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए हैं। इस प्रकार की गतिविधियाँ प्रायः किसी न किसी प्रकार की मदद करने के नाम पर किसी विश्वसनीय व्यक्ति के माध्यम से अंजाम दी जाती है।

बच्चों एवं महिलाओं के व्यापार की प्रक्रिया बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से की जाती है। मंडला के मवई विकासखंटड के शकवाहा गांव के निवासी कुंवर सिंह फलिया के पास 3 एकड़ असिंचित भूमि हैं। इनके 2 बच्चे गरीबी व कुपोषण जनित बीमारियों की भेंट चढ़ चुके हैं, परिवार आजीविका संकट से गुजर रहा था। इसी गांव की निवासी कमलावती नाम की एक 35 वर्षीय महिला ने कुंवर सिंह से कहा कि वह अपनी 14 वर्षीय लड़की को उसके साथ दिल्ली भेज दें। इसके पहले भी इस गांव से लड़कियां घरेलू कामकाज के लिये किसी न किसी

स्थानीय व्यक्ति के साथ जाती रही थी। अतः कुंवर ने अपनी बेटी को उसकी सहेली 13 वर्षीय रमा (परिवर्तित नाम) को भी कमलावती के साथ भेज दिया था।

एक वर्ष पूर्व रमा अपने गांव वापस आ गई है, वह कहती है, 'हम दोनों को काम हेतु अलग–अलग घरों में भेजा गया, वे फिर एक–दूसरे से दिल्ली में कभी नहीं मिली।' उमा कहां व क्या काम करती थी, कमलावती के अलावा कोई नहीं जानता। रमा के अनुसार वह एक घर में बच्चे की देख–रेख तथा अन्य घरेलू काम किया करती थी। कमलावती हर माह रमा की मजदूरी उसके घर भेजने के नाम पर ले जाया करती थी, जो कि कभी उसके घर नहीं पहुंची। उमा के सम्बन्ध में जब महीनों कोई खबर न मिली, तो मजबूरन उसके पिता व रमा के पिता ने दिल्ली जाकर उससे मिलने की कोशिश की। लेकिन कमलावती ने इन्हें केवल रमा से मिलाया और उनसे कहा कि उमा बहुत दूर काम करती है उससे मिलने में दिक्कत होगी। रमा एक बार वापस आने के बाद अब दिल्ली नहीं जाना चाहती है। जवाब में एक गहरी चुप्पी सबकुछ स्पष्ट कर देती है। जितने भी बच्चे विशेषकर लड़कियां, जिन्हें काम के लिए भेजा जाता है, उनसे दिन–रात काम लिया जाता है तथा उनकी मेहनत का पैसा भी बीच के व्यक्तियों द्वारा हजम कर लिया जाता है।

छिंदवाडा के कुंवर सिंह पुसाम (गोंड) की 17 वर्षीय पुत्री भी 2004 से लापता है। मंडला में काम कर रही स्वैच्छिक संस्था, निर्माण द्वारा किये गये एक स्वतंत्र अध्ययन की मानें तो मंडला जिले में पिछले 5 वर्षों में 600 से अधिक नाबालिग लड़कियां लापता हुई हैं। वर्ष 2006–2007 में ही मंडला जिला पुलिस ने 125 किशोरियों को स्थानीय दलालों के चंगुल से छुडाया। इन किशोरियों ने बताया कि इनको यौन शोषण के लिए मुंबई तथा दिल्ली में रखा गया था। छिंदवाडा जिले में गोंडवाना गणतंत्र पार्टी के विधायक मनमोहन शाह बट्टी के अनुसार 'आजीविका के अभाव में हो रहे पलायन व गरीबी की स्थिति बाल व महिला व्यापार के लिए जिम्मेदार कारकों में से एक है। उन्होंने यह भी कहा कि लड़कियों की तस्करी दैहिक शोषण के लिए की जा रही है। 'मानव व्यापार, विशेषतः बाल व्यापार की स्थिति मध्यप्रदेश से ज्यादा, देश के अन्य 5 राज्यों बिहार, पश्चिम बंगाल आंध्र प्रदेश, गोवा एवं उत्तर प्रदेश में गम्भीर हैं। यहां से बच्चों की तस्करी की जाती है तथा उन्हें वेश्यालयों, ईंट बनाने की फैक्ट्रियों, भीख मंगवाने आदि किसी भी नैतिक–अनैतिक काम में जबरदस्ती लगाया जाता है।

भारत की विडंबना यह है कि यहां पर किसी भी परिवार में किसी भी बच्चे को काम के नाम पर, महिलाओं को दूरस्थ किसी व्यक्ति से शादी कराकर, बच्चे को गोद लेकर या अन्य किसी भी प्रकार की मदद बच्चों/महिलाओं या उनके परिवार को देकर उनकी तस्करी की जा सकती है। हमारे देश में मानव व्यापार या बाल व्यापार परिभाषित नहीं है। अतः मानव व्यापार व बाल व्यापार को एक अपराध के रूप में नहीं बल्कि अपराधों की टोकरी के रूप में देखें जाने की आवश्यकता है। इस मुद्दे की गंभीरता को देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इस समस्या और इसके परिणामों को समझा जा रहा है। इसी के चलते मानव तस्करी निवारण, दमन एवं दंड प्रोटोकाल तैयार किया गया है। इसका उद्देश्य खासतौर से महिलाओं एवं बच्चों की तस्करी रोकना है। इसमें मानव व्यापार को परिभाषित किया गया है, जिसमें यौन शोषण से सम्बद्ध मानव तस्करी को ही नहीं, उन मजबूर बच्चो को भी शामिल किया गया है, जिन्हें जबरन घरेलू नौकर या खतरनाक उद्योगों में मजदूरी के लिए लगाया जाता है।

भारत ने भी सन् 2002 में इस प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किया है। इसका अभिप्राय यह है कि भारत ने इस प्रोटोकाल को लागू करने का फैसला कर लिया है। इसके अतिरिक्त आई.टी.पी.सी. एक्ट 1956, जुवेनाइल जस्टिस एक्ट, चाइल्ड लेबर एक्ट एवं आईपीसी की विभिन्न धाराएं केस विशेष के अनुसार उपयोग करके तस्कर को सजा दिलाई जा सकती है तथा तस्करी से पीड़ित को न्याय दिलाया जा सकता है। पर इस समस्या या मुद्दे में प्रमुख महत्व, जानकारी एवं जागरूकता है तथा मुद्दे के प्रति पुलिस एवं प्रशासन की गम्भीरता एवं संवेदनशीलता का होना जरूरी है। कुंवर सिंह फलिया जैसे सैकड़ों पिता जो कि गरीब एवं मजबूर हैं और इस मानव व्यापार की जालसाजी से अनभिज्ञ हैं, अपनी उमाओं को एक झलक देखने के लिए तरस रहे हैं और प्रशासन मौन है।

✍ **नीति पुरोहित**

+ 7. स्वास्थ्य का अधिकार

स्वास्थ्य के लिये आदिवासियों का संघर्ष

बड़वानी जिले के पाटी विकासखण्ड के गुपाटीवाड़ी गांव के गुछिया आदिवासी के जीवन में 22 मई को सरकारी अस्पताल में आने का यह बिल्कुल अलग अनुभव था। वह पिछले 3 महीनों से अपने पेट दर्द की समस्या को लेकर यहां के सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में इलाज के लिये आ रहा था। पर हर मर्तबा उसकी आधी बात सुनकर और बिना हाथ लगाये, बिना जांचे–परखे कागज पर दवा लिख कर दे दी जाती थी। इस सरकारी अस्पताल से उसे कभी दवा नहीं मिली। बाजार से दवा खरीदने पर उसके 1250 रुपये खर्च हुये पर इस बार इसी सरकारी अस्पताल में उसकी जांच हुई, दवा भी मिली और डॉक्टर ने यह भी बताया कि कब, कौन सी दवा कैसे उपयोग में लाना है। गुछिया कहता है कि ऐसा व्यवहार हमेशा हो तो कितना अच्छा होगा? पिछले तीन माह के पर्चों के विश्लेषण से पता चला कि गुछिया को पेटदर्द के बजाये कभी जोड़ों (हड्डी) के दर्द की दवा दी जाती रही, तो कभी स्केबीज की। ऐसे में उसका पेटदर्द कैसे ठीक होता? उनके इलाज में स्वास्थ्य सेवाओं की निगरानी करने के सामाजिक निर्णय ने अहम् भूमिका निभाई है। गुछिया केवल अकेला एक व्यक्ति नहीं है जो बीमारी के अलावा सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के अमानवीय व्यवहार का दर्द भी भोग रहा है बल्कि पाटी विकासखण्ड में इस अस्पताल में आने वाला हर व्यक्ति इस पीड़ा का गवाह बना है। परन्तु 19 मई 2008 को इस इलाके के 1500 लोगों ने, जिनमें से ज्यादातर ग्राम स्वास्थ्य समितियों के सदस्य हैं, पाटी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र को सीधे अपने निगरानी तंत्र के दायरे में ले लिया।

चार दिनों के संघर्ष के बाद प्रशासन को समुदाय के साथ एक खुले समझौते पर हस्ताक्षर करना पड़े कि हर गांव में जननी एक्सप्रेस और एम्बुलेन्स जायेंगी; मरीजों को कोई भी जाँच बाहर से करवाने और दवायें भी बाहर से खरीदने को नहीं कहा जायेगा जरूरत पड़ने पर दवाओं की स्थानीय खरीदी होगी और स्टाफ़ बढ़ाया जायेगा। अपने किस्म का यह अनूठा समझौता दस्तावेज पाटी समुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में चस्पा है। यह समझौता सरकार न तोड़ने पाये इसके लिये हर रोज दो ग्रामीण, गरीबी के बावजूद नियमित रूप से सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र की स्वैच्छिक निगरानी करेंगे। कंडरा गांव के रमेश गंगाराम कहते हैं कि निजी चिकित्सक ग्लूकोज की एक बोतल के लिए ढाई सौ रुपये और इंजेक्शन के लिये 50 रुपये ले लेते हैं, यह हजारों के कर्ज का बड़ा कारण है। ऐसे में दो दिन बिना मजदूरी के निगरानीकर्ता बनना समाज के लिए ज्यादा बेहतर है। यूं तो निगरानी और सामुदायिक सहभागिता का मुहावरा सरकारी कार्यक्रमों में लगातार कहा और सुना जाता रहा है किन्तु एक वर्ष से पाटी में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत् सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को दुरूस्त करने के लिये साथी सेहत और जागृत दलित आदिवासी संगठन ने 15 आदिवासी गांवों में 200 व्यक्तियों, आशा और सामुदायिक समूहों के सदस्यों को प्रशिक्षण देकर तैयार करने का काम किया।

'जागृत दलित आदिवासी संगठन' की माधुरी कृष्णास्वामी कहती हैं कि यह कोई आदर्श नवाचार नहीं है बल्कि अब नयापन इस बात में है कि लोग केवल विरोध या बुराई नहीं कर रहे हैं बल्कि अपनी इच्छा को जाहिर भी कर रहे हैं। पाटी में संगठन और साथी सेहत 'जन स्वास्थ्य सूचना संदर्भ केन्द्र' भी चलाते हुये स्वास्थ्य सुविधाओं के अधिकार के हनन् के खिलाफ सूचनाओं को हथियार बनाकर लड़ रहे हैं।

इसके साथ ही सामुदायिक निगरानी समूह के लोग पाटी में प्रेक्टिस करने वाले निजी डॉक्टरों के पास भी संगठित रूप से गये। सामाजिक कार्यकर्ता संत कुमार महतो बताते हैं कि निजी चिकित्सक के पास जाने वाले हर मरीज को इंजेक्शन और ग्लूकोज़ की बोतल जरूर लगाई जाती है, फिर चाहे वह जरूरी हो या नहीं। इतना ही नहीं, ज्यादातर के पास तो एलौपैथी की दवायें लिखने के लिये आवश्यक डिग्री और अनुमति भी नहीं है। संगठन का

दल स्थानीय आदिवासी भाषा में लगातार नारे लगाते रहे – ''सादी होवे बीमारी, नहीं लगे पिचकारी'' (इंजेक्शन) और ''सलाईन बाटली में काय छे, नून शक्कर पानी छे'' !!

सेहत (पुणे) के डॉक्टर अभय शुक्ला कहते हैं कि यह बदलाव के लिये चलाई गई बहुआयामी प्रक्रिया है। 25 से 30 लोगों का समूह 10 से ज्यादा निजी चिकित्सकों के पास गया और हर एक से उनकी डिग्री दिखाने का निवेदन किया। हर डॉक्टर इंजेक्शन और ग्लूकोज़ की बाटल सलाईन के पर्चे लिख रहा था पर इनमें से केवल एक डॉक्टर के पास आधुनिक दवायें देने की पात्रता थी। अन्य सभी डॉक्टरों में एक प्राकृतिक चिकित्सक, एक होम्योपैथी चिकित्सक, एक बिना डिग्री के दंत चिकित्सक, एक पूर्व कम्पाउण्डर और एक जनस्वास्थ्य रक्षक था। तब आदिवासी निरीक्षक कार्यकर्ताओं ने उन्हें समझाया कि भविष्य में वे अनाधिकृत चिकित्सा कार्य न करें और तब हर तथाकथित डॉक्टर आदिवासियों के सामने गिड़गिड़ाता नजर आया।

इस सामुदायिक निगरानी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र के कोने–कोने में व्याप्त अव्यवस्था और भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप सामने आये हैं। बमनाली गांव के निगरानी समूह के सहयोगी कुटवाल आदिवासी को प्रशिक्षण के बाद पता चला था कि एक सुई (सिरींज) से एक व्यक्ति को ही इंजेक्शन लगना चाहिये पर जब वे चुपचाप पहले दिन नर्स का काम देख रहे थे तो उन्हें पता चला कि उसने एक सुई से 10 लोगों को इंजेक्शन लगाया। तब उन्होंने विकासखण्ड चिकित्सा अधिकारी से बात की और संगठन ने भी अस्पताल को चेतावानी दी। रिकार्ड से पता चलता है कि पहले भी हर रोज 50 सिरींज का उपयोग होना दर्शाया जाता रहा है पर वास्तव में 1 या 2 सिरींज का उपयोग होता रहा।

विकासखण्ड चिकित्सा अधिकारी डॉ. ओ.पी. कदम आसानी से कहते हैं कि यह पाँच स्वीकृत पदों पर तीन ही डॉक्टर है, और हम भी विशेषज्ञ नहीं है इसलिये बीमारी के विश्लेषण (डायग्नोसिस) में हेरफेर हो सकता है। वे बताते हैं कि पहले 250 से 300 मरीज अस्पताल में आते थे पर पिछले तीन दिनों से 700 मरीज आने लगे हैं, ऐसे में हम हर एक को कितना समय दें? सही इलाज न मिलने के दावे के सम्बन्ध में उनका तर्क है कि हमें मांगने पर 10 डिब्बे दवा तो मिल जाती है पर उसमें से आधी हमारे काम की नहीं होती है; खासतौर पर ज्यादा शक्ति की एण्टी–बायोटिक और हायड्रो कार्डिसोन जैसी कई जरूरी दवायें (हृदय रोग की दवा) मिलती ही नहीं है। इस इलाके में बच्चें में निमोनिया और ब्रोन्काईटिस के सबसे ज्यादा प्रकरण सामने आते हैं। हर रोज 10 से 20 बच्चे ऐसे आते हैं पर उन्हें काम्बीनेशन सिरप नहीं मिलता; ऐसे में हमें ये मंहगी दवायें बाहर से खरीदने के लिये कहना पड़ता है। जन स्वास्थ्य अभियान के अध्ययन के मुताबिक पाटी के 74 फीसदी बच्चे कुपोषित हैं पर फिर भी अब तक यहां पोषण पुनर्वास केन्द्र नहीं खोला गया है। यहां एक वर्ष से कम उम्र के 1708 बच्चों की मौत रिकार्ड में दर्ज है। साथी सेहत के संत कुमार के मुताबिक यह आंकड़ा वास्तव में इससे कहीं ज्यादा है।

समुदाय का यह समूह अस्पताल के प्रांगण में हर रोज सुबह 9 बजे से शाम 4 बजे तक (जब मरीजो को देखा जाता है) मौजूद रहा और संगठन से जुड़े दो चिकित्सक यह जांचने में उनकी मदद कर रहे हैं मरीजों को अस्पताल में सही इलाज दिया जा रहा है या नहीं। लालू आदिवासी छह साल के अपने बच्चे को अस्पताल में दिखाने के बाद निगरानी समूह के चिकित्सक डा. नितिन जाधव के पास आये और तब पता चला कि उसके बच्चे को दस्त के बजाये खुजली की दवा दी गई है। इसके बाद निगरानी समूह के सदस्यों ने लालू के साथ जाकर इलाज ठीक करवाया इसी तरह रिनवाड़ा की समाबाई के पर्चे पर तीन दवायें लिखी गई जिनमें से 2 बाजार से खरीदने के लिये कहा गया; जबकि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के नियमों के अनुसार उसे हर दवा अस्पताल से ही मिलना चाहिये। इस निगरानी व्यवस्था को सक्रिय बनाने वाले जागृत आदिवासी दलित संगठन की माधुरी बहन बताती हैं कि इस अस्पताल का यह रोज का मामला है जब दवायें मरीज को निजी दुकानों से खरीदना पड़ती हैं और खून, बलगम एवं पेशाव की जांच के लिये भी उन्हें बाहर ही भेजा जाता है। अस्पताल प्रशासन में सफाई कर्मी से लेकर डॉक्टर तक का व्यवहार बहुत खराब होता है और सरकारी चिकित्सक मरीजों को निजी अस्पताल में जाने के लिये मजबूर करते हैं। वह बताती हैं कि आज सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र का सही संचालन न होने के कारण पांच में से चार आदिवासी परिवार कर्ज के जाल में फंसे हैं क्योंकि उन्हें बीमारियों पर हर वर्ष पांच से पंद्रह हजार रूपये खर्च करना पड़ते है। रणनीतिक तौर–तरीकों से निजी स्वास्थ्य व्यापार को बढ़ावा देने के

लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्रों में गंदगी फैलाई जाती है, दुर्व्यवहार किया जाता है तथा गलत दवायें दी जाती हैं। सरकार, दवाओं के व्यापारी और निजी चिकित्सक चाहते हैं कि लोग निजी अस्पताल में जायें। पाटी में ही तीन दवा विक्रेताओं के साथ सरकारी स्वास्थ्य प्रशासन की साठ–गांठ है। तभी आंवली गांव के भुकल्ले आदिवासी वहां पहुंचे। वह स्केबिज (खुजली) से पीड़ित थे परन्तु उन्हें खांसी की दवा दी गई और स्केबिज की दवा बाहर से खरीदने को कहा गया; संगठन ने फिर सवाल–जवाब किये तो भुकल्ले को दवा मिली। सावरियापानी के कालूसिंह आदिवासी को यहां आकर पता चला कि जननी एक्सप्रेस नाम की कोई सरकारी योजना भी है पर उसे गांव में अभी किसी ने देखा ही नहीं। विकासखण्ड चिकित्सा अधिकारी कहते हैं कि हमें कभी जरूरत नहीं पड़ी इसलिये एक्सप्रेस वाहन तैयार ही नहीं किया गया। बंडगांव की आशा कार्यकर्ता दुनाबाई कहती हैं कि गर्भवती महिलाओं के नाम पर सरकार ने खूब कागज और दीवारें रंगी हैं, नेताओं के फोटो छपे हैं पर पाटी अस्पताल में तो केवल कालिख ही छाई हुई है। सावरियापानी की झिंगली आदिवासी प्रसव के लिये जब अस्पताल आ रही थी तब पैदल आते हुये जंगल की पगडण्डी पर ही उसे बच्चे को जन्म देना पड़ा। इसके बाद उसे जब अस्पताल लाया गया तो झिंगली को भर्ती करने से यह कहकर मना कर दिया गया है कि तुम जननी सुरक्षा योजना के 1400 रुपये के लालच में आये हो, तुम्हारी डिलेवरी अस्पताल में नहीं हुई है इसलिये अब भर्ती नहीं किया जायेगा। झिंगली दर्द से कराह रही थी और जब विकासखण्ड चिकित्सा अधिकारी पर यह दबाव बनाया गया तो उसने एक शर्त पर भर्ती करने की बात की कि जाओ और आंवल (प्लेसेन्टा) लेकर आओ तभी हम मानेंगे कि प्रसव रास्ते में हुआ है। अस्पताल पहुंचने के आठ घंटे बाद उसे भर्ती कराया जा सका। निगरानी समूह के रोगी परामर्श केन्द्र पर स्वैच्छिक सेवाएं दे रहे डॉ. नितिन जाधव कहते हैं कि यहां तो स्टैथोस्कोप का उपयोग ही नहीं किया जाता, मलेरिया के मामलों में सामान्य एण्टीबायोटिक दवा दी जाती है और गर्भवती महिलाओं की प्रसव पूर्व जांच नहीं होती है। जब हमने जाँच करना शुरू किया तो पता चला कि अगस्त 2007 के बाद से दवायें नहीं मंगवाई गई हैं, यहां तक कि क्लोरोक्विन (मलेरिया की दवा) भी नहीं है, वजन मशीन एएनएम के घर रखी हुई थी और ब्लड प्रेशर यंत्र का उपयोग नहीं होता है। इन परिस्थितियों में यह पाया गया कि 80 फीसदी गर्भवती महिलाओं में हीमोग्लोबिन का स्तर 5 ग्राम के आस–पास है पर फिर भी उन्हें अस्पताल से आयरन–फोलिक ऐसिड (आईएफए) की गोलियाँ नहीं दी जाती हैं। निगरानी समिति के सदस्य वालसिंह बताते हैं कि 8 मई को अस्पताल के पीछे तीन बक्से दवायें जलाई गई और इसके उनके पास प्रमाण हैं। इसमें से एक बक्सा आईएफए गोलियों का था।

मसला कुछ मरीजों की केवल शिकायत का नहीं है बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं के तंत्र और ढांचे का भी है। 110 गांवों को स्वास्थ्य सेवा देने के लिये स्थापित इस केन्द्र में प्रसव टेबल नहीं है, लेबर कक्ष और स्त्री रोग विशेषज्ञ की तो कल्पना भी नहीं की जानी चाहिये। यहां फरवरी से मई 08 तक 7 प्रसव कराये गये हैं वह भी मेकिंग टेबल बिछाकर। भारत सरकार के प्रावधानों को यहां तार–तार होते हुये देखा जा सकता है। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में 30 पलंग होने चाहिये पर यहां मात्र 6 पलंग हैं वह भी केन्द्र के बाहर आंगन में मौजूद हैं। 45 डिग्री के झुलसाते तापमान में कपड़े लटकाकर लू और धूप को गर्भवती महिलाओं तक आने से रोकने की कोशिश की जा रही है। इस अस्पताल में चार में से तीन विशेषज्ञों के पद खाली हैं। इतना ही नहीं इससे जुड़े रोशन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र को कम्पाउण्डर, गेदाबल केन्द्र को नर्स और करवड़ केन्द्र का संचालन ड्रेसर करा रहे हैं। यहां कोई डॉक्टर नहीं है। स्वास्थ्य के अधिकार पर कार्यरत राष्ट्रीय संस्था सेहत (पुणे) के डॉ. अभय शुक्ला बताते हैं कि पाटी में टीकाकरण बेहद खराब हालत में है, पूर्ण टीकाकरण तो 10 फीसदी से भी कम है किन्तु सरकारी कागज कुछ और ही तस्वीर बयां कर रहे हैं। यहां 88 प्रतिशत बच्चों को खसरे की दवा दी गई, 123.6 प्रतिशत बच्चे आयरन की दवा ले चुके हैं, गर्भवती महिलाओं में यह उपलब्धि 129.4 प्रतिशत है जबकि सामाज की निगरानी समिति ने देखा है कि आयरन फोलिक एसिड की गोलियों के बक्सों को आग के हवाले किया जाता है। अब लक्ष्य यह है कि लोगों को अस्पताल में इलाज का विश्वास कायम हो। माधुरी बहन कहती हैं कि हमारा मकसद सरकारी स्वास्थ्य सेवा आचार संहिता और राष्ट्रवादी ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के प्रावधानों को धरातल पर उतारना है, आदिवासी संगठन ऐसा कुछ नहीं कर रहा है जो नियमों के दायरे के बाहर हो। बहरहाल अनुभव यह बताता है कि सरकारी ढांचे को समाज की निगरानी बर्दाश्त नहीं हो रही है। अतः स्वाभाविक है कि इन नियमों के क्रियान्वयन के लिये हमें हर स्तर पर कठिन संघर्ष करते रहना होगा।

✍ **सचिन कुमार जैन**